* ॐ *

।। श्री परमात्मने नमः ।।

-।।- श्री स्वामी मगनीराम जी सहाय, श्री स्वामी पानपदेव जी सहाय -।।-

सर्व संतों की दया

ब्रह्म-विद्या एकादश वाणी

प्रेम

सुख व शान्ति कैसे मिले ? आनन्द का स्थान कहां है ? हृदय की दाह मिटने का कौन उपाय है ? संसार की दौड़ धूप का विश्राम-स्थल किसमें है ? उत्तर है, प्रेम ! प्रेम की महिमा अपार है । प्रेम ईश्वर है, ईश्वर प्रेम है । प्रेम नित्य है, स्वार्थ रहित है, वासना शून्य है । सच्चा प्रेमी अपने लिए कुछ नहीं चाहता, प्रेमास्पद के अनुरोध करने पर भले ही वह कहदेः—

"नित्य मांगू हूँ तुझ से मैं तुझ ही को ।
तेरे सिवा और प्रयोजन ही मेरा क्या है ।।"

पर ऐसे प्रेमी भक्त बिरले हैं, संसार में मोह अधिक है जो अपने सुख अथवा वासना पूर्ति के लिए किया जाता है । मोह कामना से कलंकित है, इसमें स्वार्थ है । प्रेम में केवल प्रेम-भाव ही होता है । यह विशुद्ध प्रेम भगवान के प्रति संत-जन करते हैं । मछली का जल में, पपीहा का मेघ से, चकोर का चन्द्रमा से, जैसा प्रेम है वैसा ही भक्त का भगवान से होता है ।

ऐसे विशुद्ध, अनन्य प्रेम से ब्रह्म की आंच यानी ब्रह्म-ज्ञान उत्पन्न होता है; सुरत स्वांत में संचती है अर्थात वृत्ति जो इन्द्रियों में लीन है शब्द में लय हो जाती है और जैसे "स्वाति सीप में संचते" ही अमूल्य मोती बन जाता है, सुरत हंस रूप हो जाती है फिर माया मोह नहीं व्यापते । ऐसा प्रेम प्राप्त करना सहज नहीं है । इसमें प्राणों को हथेली पर रख कर चलना पड़ता है । यह खाँडे की धार है:—

प्रेम खेल को खेलना, बहु मुश्किल सी बात ।
कहे पानप खेले सोई, पहले सिर ले हाथ ।।

यह सिर का सौदा है, बहुत गहन मार्ग है । आठों पहर मन, इन्द्री गुण, काम, क्रोध लोभ मोह से लड़ना है । यह लड़ाई सूरमा ही लड़ते हैं । सनमुख रक्खे बरछी भालों यानी वैराग्य व त्याग से डर कर कायर भागते हैं, प्रेमी भक्त उनको अपना खेल बनाते हैं:—

प्रेम-पंथ बहु कठिन है, सोंही सहनै सेल ।
कहे पानप कायर भाजे, कोई सूरा खेले खेल ।।

शबदी

प्रेमः—प्रेम प्यास उपजे नहीं, माया मद में छाका ।
मन चंचल भटकत फिरे पानप, पलक ठौर[1] नहीं राखा ॥१
प्रेम प्यास तब ऊपजे, लागे सतसंग पूरा ।
आत्म सेव सुरत धर पानप, दरसन सदा हजूरा ॥२
प्रेम बिना कहो किन हरि पाया, तीर्थ किये पढ़ा और गाया ।
अंतर-यामी अंतर माही, पानप ताकू एक पल देखा नाहीं ॥३
पानप कहै प्रेम की बातें, नेमी कैसे पावे ।
नेमी उरझ रहा नेम में, प्रेमी अगम बतावे ॥४
तोड़ी प्रीति जगतसूं, राखी हरिसूं लाय ॥
पानप रहा न कहीं का, प्रभु लीन्हो अपनाय ॥५
तोड़ी प्रीति जगतसूं, हरि चर्णो से हेत[2] ।
पानप सोधी आत्मा, हरि पल पल दरसन देत ॥६
रैन बसे थे आय के, उठ चलना परभात ।
पानपदास बटोही, प्रीति करे किस साथ ॥७
हम काहू के मीत ना, हमरा मीत न कोय ।
कहै पानप सोइ मित्र हमारा, राम सनेही होय ॥८
लौ लागी छूटे नहीं, जैसे चितवन[6] चँद चकोर ।
कहै पानप गुरु भेदो मिले, ऐसे चितवन प्रेम की ओर ॥९
ओर प्रेम की चितवनि, लगी ब्रह्म की आंच ।
कहै पानप पलक थक गई, सुरत संचरी[3] स्वांत[4] ॥१०
स्वाति सीप में संचते[5], मोती भया अबिद्ध ।
कहै पानप ताके चुगे, भए साध प्रसिद्ध ॥११
स्वाति जब पाई सीप ने, तब जा गई पातार ।
कहै पानप पक मुक्ता भया, ताका मोल अपार ॥१२

१=ठिकाना, २=अनुराग, ३=एकत्रित, ४=मन, ५=प्रवेश, ६=दृष्टि।

प्रेम खेल को खेलना, बहु मुश्किल सी बात ।
कहै पानप खेले सोई, पहले सिर ले हाथ ।।१३
प्रेम पंथ बहु कठिन है, मत कोई रोस करो ।
कहै पानप चाहे प्रेम को, तो सीस उतार धरो ।।१४
प्रेम पंथ बहु कठिन है, सोंही[1] सहनं[2] सेल[3] ।
कहै पानप कायर भाजे, कोई सूरा खेले खेल ।।१५
प्रेम पंथ बहु सुगम है, जाकी नक सुध बाट ।
सुरत बांध जो जन चढ़े, कहै पानप पावे घाट ।।१६
प्रेम चोट जाके लगी, ताको कुछ न सुहाय ।
कहै पानप अंतर करक[4] , उठे कराह कराह ।।१७
अन्तर करक करे सब कारज, हरि मिलने की चाह ।
कहै पानप जब ऐसो उपजे, तिन सर्व पायो लाह[5] ।।१८
सीस उतारे हाथ ले, बिन पग दौड़ा जाय ।
कहै पानप धोका मिटे, नहचै मुक्ता खाय ।।१९

२ सूरमाः—जहां बान सतगुरु का लागा, घायल तेई हुआ ।
आठों पहर करक अन्तर में, ना जीया ना मूआ ।।१
सूर मढ़े[6] मंदनान में, मन मार किया घमसान ।
कहै पानप प्रभु रीझया, जब दगली[7] दीनी दान ।।२
बाना पहरे सिंह का, चले गीध की चाल ।
कहै पानप दरबार में, तिन का कौन हवाल ।।३
आपन सूरा सिंह है, रहे गीदड़ी होय ।
कहै पानप दरबार में, ताका पल्ला न पकड़े कोय ।।४
नाम नके में आवना, किसी सूर संत का काम ।
पांच पचीसों गुण तीनों, लड़ना अष्टो याम ।।५
पांच तत् गुण तीनसूं, आगे भक्ति मुकाम ।
सूरा पहुँचे सुरत धर पानप, नहीं दुनिया का काम ।।६

१=सामने, २=सहन करना, ३=भाला ४=पीड़ा, ५=लाभ, ६= डटना,
७=लबादा शरीर,

अपना मन परबोधा[1] नाहीं, परबोधे संसारी ।
पोट पराई ढोवे मूरख, कहै पानप यो है बेगारी ॥ ७
चोट चलावे सुरत की, मन को घायल किया ।
कहै पानप हरि चरणों माहीं, सो जन जीवत मुग्रा ॥८
जीवत मरया सोई मिलया, मरके मिलना नाय ।
जीव अजर अमर मरता नही पानप, फिर फिर योनी खाय ।६
चोट करत हैं और को, ते नर मूढ़ अज्ञान ।
कहै पानप सोई सूरमा, मारे अपना मान ॥१०
इद्रि पांच मिलावे मनसूं, यो सूरे[3] का काम ।
कहै पानप सहज होई मुक्ता, एह विधि सुमरो राम ॥११
अलख अरूप रूप बिन दीखे, घट-घट में प्रवेस ।
कहै पानप दरसे सुरतसूं, जो चढ़े अगम के देस ॥१२
अलख अलख सब जग कहै, लख न सके कोई ताहि ।
संत अलख कैसे कहैं पानप, जिन लख लीनों मन माहि ॥१३
अलख अलख सब कोई कहैं, अलख लखे न कोय ।
अलख लखा तिन सब लखा, लखा अलख अलख न होय ॥१४
कैते आवें कैते जायें, ठौर न पावें धक्के खाय ।
प्रेमी होय सोई पड़ रहै, कहै पानप सोई दरसन लहै ॥१५

प्रेम रत्नी

ना खोजे मूढ़ अज्ञानी रे, यो तो प्रेम-रतन की खानी ।टेक
एक गृह तज बन खंड जाई, वह तो कन्द मूल फल खाई ।
जप तप कर देह जरावै, हरि हीरा हाथ न आवै ॥१
करे तीर्थ ब्रत घनेरे, वसूधा परिकरमा[6] फेरे ।
योंही भ्रम में जन्म गंवावै, हरि हीरा कहीं न पावै ॥२
पंडित पढ़ें पुस्तक पोथी, यह तो प्रेम बिना सब थोती ।
पढ़ें गीता और भागवत, बिन दरसन मुक्ति न होती ॥३

१=उपदेश, ३=वीर ६=परिक्रमा ।

हरि आठो पहर को संगी, ना खोजे जगत मत भंगी ।
जिन खोजा तिन पाया, घट घट आत्मराम समाया ॥४
जिन गुरु का सबद विचारा, तिन प्रेम-पंथ पग धारा ।
आपे में आप सिभारा, तब लखो ब्रह्म विस्तारा ॥५
जब प्रेम पंथ पग धरया, प्रेमी जन जीवित मरया ।
वह तो मरत संक[2] न करया, निश्चय भवजल पार उतरया ।६
रस भाटी ताही तपावे, वह तो अमृत-बूंद चुवावे ।
पर्वत है भर-भर नैना, हरि दर्श भये सुख चैना ॥७
जब प्रेमी अमीरस छाके, ले अकल अतक को ताके ।
चचल मन थीर कर राखे, तब शब्द अनहद भाखे ॥८
जब प्रेमी अमीरस पागे, पायो राम अगमसूं आगे ।
वह तो ना सोवे ना जागे, ताकी पलक न लागे ॥९
जहां हरि आप, तहां न आपा, ताके आस पुन्य न पापा ।
वह तो आपा, जान गवांवे, पिंगल ले सुखमन धावे ॥१०
यह तो सब सुरत के खेला, प्रेमी सीस चहुंटे मेला ।
देखा आप में आप अकेला, जाके नहीं गुरु न चेला ॥११
उलटे द्वादस-कमल प्रकासा, चहूँ-दिस में भयो उजासा[1] ।
जिस उजियारे सब साँसा मारा, तिन खायो सब संसारा ॥१२
भई समुद्र-सीप प्यासी, छिन एक बाहर निकस प्रकासी ।
जब बूंद स्वाति की पाई, फिर समुद्र माहि समाई ॥१३
वामें मुक्ता-हल पक आया, मरजिया[3] बाहर लाया ।
उन जग को काढ़ दिखाया, प्रेमी सिर को बेच बिसाया[4] ॥१४
प्रेमो सतकी संघ बिचारे, ध्यान ऊपर ताके धारे ।
चढ़ सुन्न अलख तब देखा, वाके मिट गए सब परेखा[5] ॥१५

३=पनडूबा-मोती निकालने की कला, ४=खरीदा, ५=दुख,

वह तो अलख पुरुष रंगराचा, प्रेमी आवागनसूं बाचा ।
प्रेमी फिर योनी न आवे बिन जिभ्या हरि गुन गावे ॥१६
जन पानप प्रेम प्यासा, सब जगसूं रहै उदासा ।
सतगुरु मिल पंथ बताया, मन गेह मन माहि समाया ॥१७

झूलना

नाहीं नाहीं कहिए गंवार ही सूं, यह तो प्रेम अमोली सी बात है जी ।
उसकी बूझ अकल में नहीं आवे, उलटा करने लगे जीवकू घात है जी ॥१
पांचों सवादों के हाथ बिकाय रहा, त्रिगुन मारे ऊपर लात है जी ।
अकल अमोलक तत्व सोई, निस दिन बही सो तो जात है जी ॥२
कायर सस्त्र तो बांध लेवे, उठ चले लड़ने को साथ है जी ।
जावे खेत ऊपर झमके बिजली सी, मूरख भाग पाछे को जात है जी ॥३
प्रेमी जन पाछे पग न धरे आगे आगे मारे गाढ़े हाथ है जी ।
पानप दास कहत मुक्ति कैसे पावै, सरे-मैदान न पल ठंहरात है जी ॥४

राग भैरव

अपने दुखकी मैं कहूँ बिथा, मोहि सुनावे कोई प्रेम कथा ॥टेक
दे दिखाय कोई प्रेम का अक्षर, देखत जाय मोह मद मतसर ॥१
बिन प्रभु देखे नाहिं चेन, वैश्या का पत कहिये कैन ॥२
हरि बिन वैश्या सब संसार, पूजै आन तजे भरतार ॥३
कथै कथा रहसै मन माहि, घट में साहब सूझा नाहिं ॥४
प्रेम बिन ए पेढ़ें कुरान, खुदा से दूर पड़े तुरकान ॥५
प्रेम कथा मेरे गुरु बताई, ताके पढ़े बहुत सुख पाई ॥६
अक्षर प्रेम अगम के माहि, परस परस पानप बल जाई ॥७

नमोः देव देवं नमोः ब्रह्म ज्ञानी ।
नमोः सेव सेवं नमोः तत्व ज्ञानी ॥
नमोः संत सतगुरु जिन्हों तत्व चीन्हा ।
नमोः दास पानप जिन्हों तत्व चीन्हा ॥
ॐ लिखंतं पढंतं सुनंतं शब्द विचार करंतं, मुक्ति फलपायंतं ।
श्री गुरु के चरणारबिंदं नमस्कारं-नमस्कारं ॥

*** इति ब्रह्म-विद्या एकादश वाणी ***

॥ ॐ ॥
॥ श्री परमात्मने नमः ॥
-॥- श्री स्वामी मगनीराम जी सहाय, श्री स्वामी पानपदेव जी सहाय -॥-
सर्व संतों की दया

ब्रह्म-विद्या द्वादश बाणी

कर्म

कर्म तीन प्रकार के हैं (१) क्रियमान (२) संचित (३) प्रारब्ध। क्रियमान वह कर्म हैं जो अपनी इच्छा से किये जाते हैं। अनेक जन्मों के संग्रहीत कर्मों को संचित-कर्म कहते हैं। संचित कर्मों के अंश लेकर शरीर बनता है उसमें भोगों से नाश होने वाले कर्मों के अंश का नाम प्रारब्ध है। संचित से स्फुरण, स्फुरण से क्रियमान, क्रियमान से पुनः संचित और संचित के अंश से प्रारब्ध—इस प्रकार कर्म-प्रवाह में जीव निरन्तर बहता रहता है और प्रारब्ध के अनुसार आवागमन भुगतता रहता है।

"कर्म मज़ाहम होता ना, तो होता सब एक सार।"

देह-धारी जीव कर्म किये बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता; कर्म के बिना जीवन यापन सम्भव नहीं है, अतः जीव के लिये कर्म अनिवार्य है। तब प्रश्न उठता है कि कर्म-बन्धन से निवृत्ति कैसे हो? वास्तव में कर्म कोई फल उत्पन्न नहीं करते। कर्म के साथ हमारी इच्छा व अहंभाव जो सम्मिलित हैं वे फल के हेतु हैं। कर्म करते समय इन दोनों को हटाकर ईश्वर निमित्त कर्म करने से फल नहीं लगता अर्थात् निष्काम कर्म ही कर्म निवृत्ति है। शुद्ध-चैतन्य आत्मा और अहंकार एक दूसरे से भिन्न होने पर भी अविवेक के कारण एक प्रतीत होते हैं। मैं यह करता हूँ; मुझको यह चाहिए ऐसे भावों का नाम कर्म है। आत्मा व अंतःकरण के भेद की जानकारी हो जाने पर यह भाव नहीं उठते। फिर जीव जो कर्म करता है उसमें प्रभु इच्छा प्रतीत होती है:—

जो कुछ किया सो तो आप ही, जो कुछ करे सो आप।
कहै पानप कर्ता करे, तोकू पुन्न न पाप॥

बढ़ई बसूले से लकडी गढ़ता है, रंदे से साफ करता है; यहां रंदा व बसूला साधन हैं, करता बढ़ई है। इसी प्रकार जीव भी सृष्टि कर्ता के हाथ का यंत्र है देह-बुद्धि के कारण अपने को कर्ता मानता है अतः मनुष्य का चिन्तन व मनन यह होना चाहिए कि मैं यह मृतक शरीर नहीं हूं, देह ऊपर की पपडी है; मैं हूँ शुद्ध अखंड अविनाशी आत्मा। यह निश्चित हो जाने पर कर्तापन का अहंकार दूर हो जावेगा।

यज्ञ, दान, तप, नाम-स्मरण, चिन्तन, ध्यान—यह सब कर्म हैं पर नित्य नियमित कर्म हैं जिनको निष्काम भाव से करने पर अंतःकरण शुद्ध बनता है, अहं भाव छूटता है, और आत्म-ज्ञान की प्राप्ति होनी है। फिर अपनी कोई इच्छा नही रहती, न अपना कोई कार्य रहता है। भगवत् इच्छा और प्रेरणा से ही सब काम होते हैं:—

आपको मान रहा आपसूं, अज्ञान रहा कर्म बांधा सोय।
कहे पानप आत्म पहिचाना, कर्म न लागे कोय॥

मां अपने बच्चे के पालन पोषण में अनेक कष्ट उठाती है यह वह केवल स्नेह के कारण करती है उसको न कुछ अभिमान होता है न कष्ट; यह उसका सहज स्वभाव है जिसमें वह सुख प्रतीत करती है। ऐसे हार्दिक व भावना युक्त कर्म "अकर्म" कहलाते हैं अर्थात वह कर्म जिनके करने में कर्म का बोझ न मालूम दे। प्रकाश देना सूर्य का सहज धर्म है। सत्यता, दयालुता, मधुरता संतों के स्वभाविक गुण हैं उनके साधन नैसर्गिक हैं और उनकी उपस्थिति मात्र से ही वाता-वरण में चैतन्यता व शुद्धता आजाती है। अनन्त कर्म करने पर भी वह अकर्ता बने रहते हैं:—

कर्म करे लागे नहीं, ऐसा है वह देस।
जो कोई वा घर जा पहुंचे, पानप जाने सोई विवेक॥

शब्द

सकल सृष्टि करमों बंधी, बिन हृदय हरि नाउं।
नाम हृदय में जो धरे, कहै पानप ता बलि जाऊं ॥१
कर्म मुजाहम[१] होता ना, तो होता सब एक सारा।
देह माहि विधि सब एक सारी, पानप भुगतै कर्म भुगतारा ॥२
आपे को मान रहा आपसूं अजान रहा कर्म बांधा सोय।
कहै पानप आत्म पहिचाना, कर्म न लागे कोय ॥३
कर्म कटे हरि नामसूं, हृदय धरे न कोय।
जन्म जन्म पानप कहै, जीव कर्मों के वश होय ॥४
हरि को भूला कर्म कमावे, सो राक्षस है भाई।
कहै पानप हरि नाम बिसारा, वह राक्षस दोज़ख जाई ॥५
कर्म कमावे लगे फल सोई, हरि को लाज कहां।
हरि को लाज ताहि की पानप, जो चर्णों राच रहा ॥६
कहै पानप हरिका को नहीं, हरि सब का सिर–पोस[२]।
कर्म कमावे जीव सब, हरि को लावे दोस ॥७
एक हरि सुमरन बिना, पच पच मरे गंवार।
आत्म तत्व खोजा नहीं, यो सहै कर्म की मार ॥८
आत्म तत्व को खोज ले, प्रगट सब के आगे।
कहै पानप अलख दर्श ताको होई, तनिक सुरत जो लागे ॥९
कर्ता करे कर्म नहीं करता, जो वह करे सोई होय।
जाके हृदय राम नाम है पानप ताको कर्म न कोय ॥१०
कर्म करे लागे नहीं, ऐसा है वह देस।
जो कोई वा घर जाय बसे, पानप जाने सोई विवेक ॥११
अलग नाम और ठांव अलग है, वहां बसे कर्म न लागे।
कहै पानप जन कर्म कमाए, ना जन कर्मों से भागे ॥१२

१=हस्तक्षेप, २=पालन-हारा

भ्रष्ट

अंतर धुन मन लाय, राम गुन गाइये ।।टेक।।

भ्रष्ट[1] तेई नर जान, जुआ खेलत हैं जुआरी ।
नित संसा[2] में मरें, गांठ की पूंजी हारी ।।
पूंजी अबध की सुध कर पल पल, सब संसा मिट जाय ।
अपने मनकू खोज के जी, धर लीजे मन माहिं ।।१

भ्रष्ट काम, क्रोध, लोभ, और दया विहीना[3] ।
परमात्म भरपूर, भ्रष्ट नहीं दर्शन चीन्हा ।।
दर्शन घट घट छाय रह्यो, परमात्म भर-पूर ।
अकल लगा के देखिये जी, दर्शन सदा हजूर ।।२

भ्रष्ट चोर परनिन्दक, भ्रष्ट तृष्णा बुद्धिनासी ।
दगाबाज़ भ्रष्ट, भ्रष्ट न होय विश्वासी ।।
यो विश्वास निश्चय करये जी, पांचों छलों को मार ।
और भांति यह हाथ न आवें, बांध सुरत के तार ।।३

भ्रष्ट मान–गुमान, भ्रष्ट ते आत्म–घाती ।
भ्रष्ट खुदी और गुमर[4], भ्रष्ट हरि तजो संगाती ।।
हरि संगत तजिये नहीं, मस्तक चरण विचार ।
गाढ़ी दृष्टि लगाय के देखयो जी, दर्शन अलख अपार ।।४

मिथ्या भाषै भ्रष्ट, सोता कभी छूटे नाहीं ।
सुखन–परवरी[5] भ्रष्ट, फैली जग माहीं ।।
सुख़न–परवरी शब्द की, बांध आगे कर लेह ।
शब्द प्रतीति न छोड़ये जी, सिर को बदले देह ।।५

१—पतित, २—संशय, ३—रहित, ४—घमंड, ५—निज प्रशंसा ।

भ्रष्ट पीवे सुरापान, भ्रष्ट ते मांसाहारी।
　　भ्रष्ट वेश्या को संग, भ्रष्ट ताके पर-नारी॥
नारी अपनी ताकये, पलक न दीजे जान।
　　तब घरुआ सुबस बसे जी, उलटी मन में आन॥६
पढ़ पढ़ भूले भ्रष्ट, ब्रह्म घट में नहीं खोजा।
　　अगम निरंतर चरन, सुरत धर भ्रष्ट न पूजा॥
अगम निरन्तर चरन सुरत धर के, कोई प्रेमी बेसिर जाय।
　　और भांति सेवा नहीं ताकी, सेवो सुरत लगाय॥७
भ्रष्ट तीर्थ को जाय, ब्रत कर मन में फूला।
　　मुक्ति करे हरि नाम, भ्रष्ट नर ताको भूला॥
हरि का नाम प्रतीति कर, धर सुमरो हृदय माहिं।
　　आठों पहर सुरतसूं सुमरो, तें जन मुक्ति समाय॥८
भ्रष्ट आन की आस, भ्रष्ट सब भरम की पूजा।
　　सब घट आतमराम, भ्रष्ट को दीखे दूजा॥
दुतिया गुरू गमसूं मिटे, आतम लियो पहचान।
　　जिन आतम को जाना बुद्धिसूं, ते पहुँचे स्थान॥९
भ्रष्ट बहुत कर न्हाय, भ्रष्ट अन्तर मन मैला।
　　भ्रष्ट नहीं मन थीर, भ्रष्ट—मन जग में फैला॥
जग में मन फैलेकू, गुरूमुख कर कर समेट।
　　पलक एक मन थीर रहेजी, परम पुरुषसूं भेंट॥१०
नाभि निरत बिच रमे, तेई उत्तम जग माहिं।
　　भक्ति बसे मन माहिं, एक पल बिसरे नाहिं॥
कहै पानप हरि नाम बिना, भ्रष्ट सब ससार।
　　आतम दरसी निर्मला, जिनके हरदम नाम विचार॥११

ज्ञान सुखमनी

दोहा—घुरें जुझाऊ[1] गगन में, फरहरा[2] अधर निसान।
कहै पानप कायर भाजे, कोइ सूरमा मड़े मैदान ॥१
सूर मड़े मैदान में, नहीं आड़ नहीं ओट।
कहै पानप मन मारा, गुरू-शब्द-बाण की चोट ॥२

छत्री तत गहै तलवार, पांच पचीसी पे नित मार।
त्रिकुटि संजम माड़ै खेत, निस दिन तहां लड़ाई लेत ॥
ते जन तुरी[3] पवन की साजै, अड़ा रहै दसवें दरवाजे।
गुरू गम पाई ऐसी यंत्री, कहै पानप सोई सांचा क्षत्री ॥

दोहा—पानप कहै भजन कर ऐसा, जासे सुरत रहे ठहराय।
सुरत ठहरे मन अचल होय, अंत नहीं चल जाय ॥

ब्राह्मण ब्रह्म पिछाने सोय, तन मन खोजे निर्मल होय।
पांच तंत का करे जनेऊ, गल में डारे ताको सेऊ ॥
सुरत पतरा करे विचार, अन्तर अक्षर धरे सिंभार।
अंतर-गत की मेटै दोय, कहै पानप पंड़ित है सोय ॥

दोहा—माला जपूं न कर जपूं, मुख से कहूँ न राम।
सतगुरू अंतर ठांव बताई, तहां रटूं[4] अष्टयाम ॥
अष्टयाम वहाँ रटूं, जहां दो पर्वत की संध।
वहाँ आसन चढ़ पानपा, होत सदा आनन्द ॥

बनिया सो जिसे योह बन आवे, तन के मध्य हाट बनावै।
या मन के पलड़े है दोय, डंडी सुरत तराजू होय ॥
चुटले[5] मंझे[6] लावै नाम, पूरा तोले अष्टो-याम।
दुरमत[7] वारी मन नहीं लावै, कहै पानप बनिया सच कहावै ॥

१=रणभेरी, २=ध्वजा, फहराना, ४=नरसिंहा, ५=चोटी, ६=बीच,
७=दुर्मति, कुबुद्धि।

राग बिलावल

ऐसा करो अचारा, पंडित ऐसा करो अचारा[1] ।
ताते यम की त्रास मिटे, होय जन्म मरन निरवारा[2] ।।टेक
मेंढक मछली जल में ब्यानी, सूतक का बिसतारा ।
चौका देते पातक हुआ, जीव दया बिन मारा ।।१
सब मल भक्ष करत है मक्खी, सो चौक में आई ।
भक्षै अन्न क्रिम सुमरण बिन, हरि बिन मुक्ति नाहि ।।२
काम, क्रोध, लोभ और मोह, ए सब चौके में संगी ।
बिन सत्गुरू योंही जन्म गंवाया, मन न थीर रत[3] रंगी ।।३
मुख में हाड़ पेट में विष्टा, नरकी नवों द्वारा ।
बाय अपावन चौके छूटी, भ्रष्ट भया आचारा ।।४
ब्रह्मज्ञान चहुँदिस में चौका, सुरत आत्म संग धारी ।
कहै पानप सोई गुरू हमारा, ऐसा होय आचारी ।।५

कायम सोध

नेक नेकी करो बदी को दूर धर, बदी के साथ तू नरक समायगा ।
जन्म अच्छा धरो हृदय सुमरन करो, कहर[4] की लहरमें अंत पछतायगा ।।
महर[5] की लहर कोई संत हृदय धरे, जिन्होंने गुरू उपदेश पाया ।
महर मन में धरी, देह सीतल करी, चहूँ-दिस देख अलेख राया ।।
खोज घट को लिया तत् दर्श पाया, किया कर्तार जो आप चाहा ।
दास पानप बारंबार बल बल गया, निरख अरूप मनमें अघाया[7] ।।

२=छुटकारा, १=आचरण, व्यवहार, ३=लाने, ४=विपत्ति, ५=कृपा, ६=परमात्मा, ७=संतुष्ट ।

नमोः देव देवं नमोः ब्रह्म ज्ञानी ।
नमोः सेव सेवं नमोः तत्व ज्ञानी ।।
नमोः संत सतगुरु जिन्हों तत्व दीन्हा ।
नमोः दास पानप जिन्हों तत्व चीन्हा ।।
ॐ लिखंतं पढंतं सुनंतं शब्द विचार करंतं, मुक्ति फलपावंतं ।
श्री गुरु के चरणारविंद नमस्कारं-नमस्कारं ।।

• इति ब्रह्म-विद्या द्वादश वाणी •

ॐ

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

-॥- श्री स्वामी मगनीराम जी सहाय, श्री स्वामी पानपदेव जी सहाय -॥-

सर्व संतों की दया

ब्रह्म-विद्या त्रयोदश बाणी

भक्ति-मुक्ति

संसार में भक्तों की भरमार है सब ही अपने को भक्त प्रसिद्ध करते हैं पर भक्ति है अति कठिन जो सिर देकर प्राप्त होती है। सारे भोग विलास व आसक्ति को त्याग कर केवल प्रभु के चरणों में आत्म समर्पण करना होता है। यह औघट घाटी का चढ़ना है:—

"कहे पानप इस संसार में, बड़े भरम के ठाठ।
हरि की भक्ति कठिन रे भाई, चढ़ना औघट घाट॥

अनन्य, निःस्वार्थ प्रेम का नाम भक्ति है। शरीर, मन, बुद्धि, हृदय सब कुछ भगवान के अर्पण करके भक्त निश्चिन्त हो जाता है। उसको सब ओर भगवान दृष्टिगोचर होते हैं "जित देखूं, तित तू ही तू"। वह सब में प्रभु को देखता है, सबसे प्रेम करता है:—

निश्चय हरि की भक्ति कर, कर जीव का उपकार।
कहे पानप और सब धंध हैं, तू धंधा सबही बिसार॥

मनुष्य योनी बड़े भाग्य से मिलती है। जिसका धर्म है भक्ति प्राप्त करना। "भक्ति धरी सबके सिर ऊपर, जब मानुष-देह बनाई" भक्ति की राह में मन घात लगाये बैठा है; यह मनुष्य को भूल भुलईयों में डालकर लक्ष्य से विचलित कर देता है, इसका साधन न करना ही भक्ति की [illegible]:—

सुरता [illegible], सोही भक्ति की [illegible]।
सत्य सुरत [illegible], सोई भक्ति [illegible]॥

मन को सुरत द्वारा परमात्मा में लगाने को ही संतों ने भक्ति कहा है। इससे माया व काल का जंजाल छूट जाता है, भ्रम नष्ट हो जाता है और जीव निज देश में जो प्रेम का भन्डार है पहुँच कर आनन्द पाता है। यही मुक्ति है।

पांच तत्व, चार अन्तःकरण और दस इन्द्रियों में सुरत फंस गई है उसका बन्धन शरीर से अति गाढ़ा हो गया है। जिस बन्धन के कारण सुरत अपने स्वरूप को भूल गई है और शरीर को ही अपना रूप व धाम समझती है। इस भ्रम और बन्धन से छूटने का नाम मोक्ष है:—

"सोई संत मन मनसा मारै, सुन्न मंडल में जीव उधारै।
मुक्ति सोई हरि दरसन होय, कहे पानप और मुक्ति न कोय॥"

वास्तव में मन ही से बन्धन है, मन ही से छुटकारा है। यम, नियम, पठन, तीर्थ, व्रत—सबका उद्देश्य मन का निग्रह करना है। संत सुरत द्वारा राम नाम जपकर मन को वश में करते हैं और जीवन-मुक्त हो जाते हैं:—

हरि को नाम सुरतसूं सुमरे, हृदय में लौ लाय।
कहै पानप सुनो भाई साधो, जीवित मुक्त हो जाय॥

जो जीता ही अपने को मृतक समान बना लेता है अर्थात् अपनी समस्त इच्छाएँ भगवान में समर्पित कर देता है वही जीवन-मुक्त कहलाता है। मरकर मुक्ति की आशा करना भूल है जीव अजर अमर है, कभी नहीं मरता, अपने को न पहिचानने के कारण संशय-युक्त हुआ जन्म मरण के दुःख सहता है:—

जीवित मरा सोई मिला, मर के मिलना नाय।
जीव अजर अमर मरता नहीं पानप, फिर-फिर योनी जाय॥

जीवन-मुक्त पुरुष संसार के भोगों से ऊपर उठा होता है उसकी इन्द्रियां अपना अपना कार्य करती हैं पर वह भोगों में आसक्त नहीं होता; शोक वह मोह से रहित हुआ आत्मा में ही सुख व शान्ति पाता है।

शब्दी

भक्ति धरी सब के सिर ऊपर, जब मानुष-देह बनाई।
यो जग भूला भ्रम में पानप, सिर पे भक्ति गंवाई ॥१
कहै पानप इस संसार में, बड़े भ्रम के ठाठ।
हरि की भक्ति कठिन रे भाई, चढ़ना औघट घाट ॥२
औघट घाटी चढ़ना भाई, जहां दो पर्वत की संध।
पहुँचे सुरत और नहीं जावे, कहै पानप दरस आनन्द ॥३
दरसनसूं आनन्द है, और आनन्द कुछ नाहिं।
दरसन बिन आनन्द कहै पानप, निश्चय नरक समाई ॥४
हर की भक्ति सीस पर खोजी, जिन गुरू का सबद विचारा।
अष्टयाम आतम सेवे मनसा, कहै पानप भवजल पारा ॥५
भक्ति सोई अन्तर भजे, मुखसूं कहे न राम।
कहै पानप सुमरे सुरतसूं, ताके सरै[1] काम ॥६
भक्ति करे सोई तिरे, भजन करे कोई नाय।
भजन करे मन सुरतसूं, कहै पानप मुक्ती समाय ॥७
अन्तर गत का कीर्तन, बाहर का प्रकास।
कहै पानप एसे भजे, तो निज हरि के दास ॥८
भक्ति नहीं कुछ गावना, पढ़ना भक्ति न होई।
अन्तर धुन मन थिर कर राखे, पानप सांची भक्ति सोई ॥९
सीखे गावे भेद न पावे, कहै पानप योंही जन्म गंवावे।
सीखे गावे करे विचार, ते जन पावे मुक्ति द्वार ॥१०
हरि भक्ति करे ते सूंचा, जिन मनसा ले मन धोया।
हरि दरसनसूं मन थिर हुआ, पानप अलख पुरुष को जोया ॥११
हरि भक्ति प्रगट है परचा, जीवत आवागमन नसै।
कहै पानप धर सुरत अगम घर, मस्तक निर्मल जोति लसैं[2] ॥१२

१=पूरे हों, २=विराजना।

सुरत सधी न मन सधा, यो भक्ति की हान
साध सुरत मन अन्तर राचे, सोई भक्ति परमान ।।१३
कैसी भक्ति करी यो बन्दे, जो दरसा नहीं राम ।
कहै पानप बिन मन बांधे, सरा न एको काम ।।१४
सुरत बांध मन में धरे, अलख पुरुष दरसावै ।
कहै पानप सांची भक्ति यो, मेरे साहब के मन भावै ।।१५
भक्ति जहां कलजुग नहीं, और कलियुग सबको मारै ।
हरि की सरन गह[१] रहो पानप, सकल विघन[१] सो टारै ।।१६
साहब मेरा बाज़ीगर है, माया आज्ञाकारी ।
राम कहन की आसा छूटी पानप, रही भक्ति जगतसूं न्यारी ।।१७
मोहि दीखे जगत एकसारा, को मलीन को सूंचा ।
सबका हाल एकसा मरते, पानप कौन नीच कौन ऊँचा ।।१८
नहचै हरकी भक्ति कर, कर जीव का उपकार ।
कहै पानप और सब धंध है, तू धन्धा सब विसार ।।१६
हरि की सरन गह रहो, सबसूं रहो निर्वैर[२] ।
कहै पानप प्रभुसों मिलो, मन को अंतर फेर ।।२०
सब आत्मा एकसी, सबसूं कीजे मेल ।
एकसूं मिले एकसूं ना मिले, इस दुरमत को पेल ।।२१
सर्व आत्मा एकसी, मित्र सत्रु[३] कौन ।
पानप सेवो आत्मा, घट घट गह रहो मौन ।।२२
स्वांस स्वांस हरि चर्णों लागे, अंतर धुन मन माहि ।
कहै पानप हरि भक्ति योही है, और सब जग योंही जाई ।।२३
या जग में हरि भक्ति नहीं, भरम भक्ति जग लागा ।
कहै पानप सोई मुक्त भया, आत्मसूं मन पागा ।।२४।।
जहां भरम तहां भक्ति नहीं, भरम भूला सब लोय[४] ।
कहै पानप सतगुरु बिना, भक्ति न पावै कोय ।।२५

१=बाधा, २=द्वेष रहित, ३=शत्रु ४=लागे, ५=ग्रहण

कहै पानप सतगुरु मिले, तब भक्ति को दे बताय ।
आत्म-राम प्रगट है सिर पे, देखो अकल लगाय ॥२६
भक्ति-भक्ति सब जग कहै, करता दीखे नाहि ।
करता दीखे भक्ति को, पानप नहचं मुक्ता पाहि ॥२७
जगत कहै हम मुक्त भए हैं, यो मनवा नाच नचावे ।
कहै पानप मुक्ति नहीं, जब लग मनवा हाथ न आवे ॥२८
मुक्ति नहीं हरि-नाम बिन, आदि-अन्त की यो है साख ।
कहै पानप चाहे मुक्ति को, तो नाम हृदय में राख ॥२९
हरि का नाम हृदय नही, करे दान और पुन्न ।
कहै पानप ए आवागमनी, भुगतै आवागमन ॥३०
हरि दरसन बिन मुक्ति नहीं, जो कोटि सयान[1] करो ।
सुरत बांध जो मन को धारं, पानप तुरत ही पार करो ॥३१

राग रामकली

चेते क्यों न गंवार मना, तेरा अरमान[2] जैसा सुपना ॥टेक
मारत पलक होय तन माटी, तापर मान गुमान घना ॥१
बालू के मन्दिर में बैठा, बिनसत[3] लगत न एक छिना[4] ॥२
चाहे भला याद कर प्रभु को, अब तेरो दाव भला जो बना ॥३
पानपदास भक्ति कर हरि की, फिर जन्म-जन्म नहीं पछताना ॥४

२

भक्ति बिन जगत दीखे जैसा सुपना,
सकल बटोही लोग कोई नहीं अपना ॥टेक
जो देखा सो चल चल माहिं, एक पलक कोई स्थिर नाहिं ॥१
बाजीगर कैसी पुतली आवें, बिनसत छिनक बार[5] नहीं लावें ॥२
कहै पानप गुरु तत्त लखाया, आवत जाता दिष्ट समाया ॥३

१=चतुराई, २=चाह, ३=नष्ट, ४=क्षण, ५=देर

नाम लीला

दोहा—पानप कहै विचार के, यह भक्ति परमान।
जप तप संजम सेवा पूजा, सब ही भरम की खान॥

हरि मार्ग अति झीना भाई, खांडे की धार चढ़ा न जाई।
बिन सिर कोई हरजन जाई, पहले आपा दे मिटाई ॥१
संत आस दूजी नही करें, हरि बिसरे तो पल में मरें।
लोक लाज का बंधन गाढ़ा, हर हितकारी पहलेही छाड़ा ॥२
ता में सब जग फस फस मरा, लज्जा सहित कोई नही तिरा।
लज्जा कहै मैं यम की चेरी, सब जग माँहि दुहाई मेरी ॥३
मैं काऊ के हाथ न आऊं, अपने संग यम हाथ बंधाऊ।
मेटे मोहि सोई हरि पावै, कोई जन पहिले मोहि मिटावै ॥४
गाढ़े बंधन कुल की कान, जग मैं पड़ा बड़ा बंधान।
कुल सतसंगत करन न देई, वह परमोद[1] आप में लेई ॥५
लोक बड़ाई बांध जग लिया, बांध मौत का चेरा किया।
बडे बड़े भूले लोक बड़ाई, हरि की भक्ति तिनहूँ न पाई ॥६
हरि सुमरा, सोई मुक्त हुआ, यह जग बूड़ बड़ाई मुआ।
हरि सुमरन तहां विघ्न न व्यापे, हरि सुमरन तहां पुन्न न पापे ॥७

दोहा—संतो सुमरन कीजयो, पटको लोक बड़ाई।
लोक बड़ाई यम की दासी, जिन दुनिया सब चुन खाई ॥१
गुरू उपदेसी भकति सो, जहां तन–मन भेद विचार।
भ्रम भक्ति से कोई न छूटा, सिर पे यम की मार ॥२
लोक लाज कुल कान है, तो हरि नहीं पावे कोय।
जाको हरि अपना कर लेई, इन से न्यारा होय ॥३

१ = हर्षित

(नाम लीला) न्यारा होय सतसंगत करे, जन बानी हृदय में धरे।
अगम अपार संत की बाणी, निकट कहै मुक्ति की खानी ॥१
खानी खोजे ते तत सार, सुषमन का घर अगम अपार।
हरिजन देखे दृष्टि पसार, निसदिन बहै मुक्ति की धार ॥२
भर भर दृष्टि उलट कर पिया, चाख अमी-रस युग-युग जिया।
हर-जन हरि रस चाख बखाना, बिरले बिरले शब्द पहचाना ॥३
रोम रोम उचरे ररंकारा, आत्म मन[३] रहना इकसारा।
आतम-तत्व सुरतसूं खोजा, घट घट दरसन अन्तर सूझा ॥४
घट घट एको दूजा नाहीं, मिल सतगुरू यह मति पाई।
जो कोई अपना घट खोजे, अलख पुरुष वाही को सूझे ॥५
मन दीपक मनसा कर बाती, ज्योति बलै सूझे दिन राती।
तिरगुन तेल तामें पूरे, सिर पे निर्मल ज्योति हजूरे ॥६

दोहा–अकल कला को खेल है, देखे उलट कर कोय।
जिन देखा सोई मुक्ता हुआ, ताको आवागमन न होय ॥ १

जो हरजन हरि-रस की चाह, बिखरी सुरत एक घर लाव।
बिखरी सुरत भक्ति नही होई, भूठे भ्रम न भूलो कोई ॥१
एक सुरत पांचों संग वहै, बिन गुरू–यत्न न राखी रहै।
यही सुरत गुन लाग बहानी, तबलग कारज सरै न प्राणी ॥२
जबलग कारज एक ना सरे, सुरत काज और और करे।
सुरत समेट ले मेरे भाई, ठौर सुरत की है घर माहिं ॥३
दो पर्वत बिच सत की संध, योग युगतसूं तहां राखो बंध।
तहां बसे पल चलन न पावे, तब सांचा हरि भक्त कहावे ॥४
सुरत युक्ति कर वहां ठहराई, सो जन दर्शन माहि समाई।
दर्शन कर मन स्थिर हुआ, पाई मुक्ति जीवत मुआ ॥५

दोहा–जो जन जीवत ही मूआ, और सुनी अनहद बानी।
मुक्ति हुआ तब जानिये, योनी न आवे प्राणी ॥१

सांची भक्ति करो हरि केरी[१], तासे जीव मुक्ति हो तेरी।
बिन सतसङ्ग नहिं भक्ति उपचारा[२], भ्रम में भूला सब संसारा ॥२

१=की, २=उपाय, प्रयोग ३=स्तब्ध, मन्द।

भक्त-बोध

हरि की भक्ति करो रे प्राणी, भ्रम साथ नहीं बहना ।
भव-सागर की धार तेज़ है, सुमरण सहित ऊभना[१] ॥१
हरि की भक्ति करे जो कोई, जरा मरनसूं छूटे ।
जिन संसय ने यो जग खाया, ता संसय को कूटे ॥२
भक्ति मुकाम दोऊ सुर ऊपर, चतुर विवेकी सोधे ।
चोरी करें चोर पाचों, जतन जतन प्रमोदे[२] ॥३
रहे निरन्तर खोजे अंतर, योही भक्ति है साँची ।
जप, तप, संयम, सेवा, पूजा, और सब मत काँची ॥४
नक सुध बाट घाट जहां औघट, सब संयम वहां ठाई ।
पहुँचे पवन जतन जतन कर, जीव साथ चढ़ जाई ॥५
जन्म जन्म के बिछड़े हंसा, दोऊ अमिल मिलाऊँ ।
अलख अरूपी ज्योति सरूपी, घट में दर्शन पाऊँ ॥६
सुन्न सरोवर संजम साधू, द्वादस तिलक चढ़ाऊँ ।
डोर पवन की जलका मनिया, कर बिन माल फिराऊँ ॥७
अलख पुरुष ले गगन अराधूं, आतम अंतर धाऊँ ।
अकरन करूं रैन दिन ऐसा, बहुर न भवजल आऊँ ॥
तन मन खोजे संसा भाजे, होय ब्रह्म प्रकासा ।
कहै पानप जो सुरत विचारे, छूटे जरा मरन की त्रासा ॥[३७]॥६

झूलने

सोहं सोहं निसानी अगम ही की, जिसके ऊपर तो भक्ति मुकाम है जी।
सुरत बांध चढ़े हर दम सूरमा ही, नहीं दुनिया का यो तो काम है जी ।२
तन माहि अचंभा सा होय रहा, रोम रोम गरजे मानो घन है जी ।३
पानपदास भवजल के तिरने को, नहीं दूसरा जतन है जी ।४

१=उठाना, २=शुद्ध, नियमित, ३=डर, ४=स्वर ध्यान ।

ज्ञान सुखमनी

दोहा:—अपना ही सुमरन करूं, अपना ही धरूं ध्यान ।
कहै पानप नासो तिमिर, दियो सतगुरु यो ज्ञान ।।१

भक्त सोई जो भय में नाही, निर्भय रहै अगम घर माही ।।१
मानसरोवर मन को धोवे, मस्तक द्वादस तिलक संजोवे[1] ।२
डोर पवन की जल का दाना, माल पिरोवे संत सयाना ।।३
कर बिन रहै फेरता माल, मुख बिन जपै अजपा सवाल[2] ।।४
निसबासर आतमसूं लगता, कहै पानप सोई सच्चा भक्ता ।।५

दोहा:—भजन सोई जासे भय भाजे, यम की त्रास न होई ।
और भजन सब भरम की खानी, भरम न भूलो कोई ।।

राग भैरो

भक्ति-दान पाऊँ राम, भक्ति-दान पाऊँ ।
योही आस लाग प्रातः आयो मैं पाऊँ ।।टेक
पलक नहीं टिकन देत चपल तेरी माया ।
राख लेहो स्वामी-संत, सरन तेरी आया ।।१
मेरो जिजमान तूही, और कोई नाहीं ।
एक नाम दान मोहि दीजिए गुसांई ।।२
अष्ट सिधि चार मुक्ति मेरे क्या करना ।
हृदय में नाम रटूं लाग रहूँ चरना ।।३
सुन्न शहर झीना महल पौढ़े[3] रघू-राया ।
और न उपाय मैं तो सुरत बांध आया ।।४
रसना बिन गुण उचारूं, देखूं बिन नैना ।
श्रवन बिन शब्द सुनूं, सतगुरु की सैना ।।५
हूं तो आधीन दीन, कहै पानपदासा ।
बिसरगयो आन-देव चरनों की आसा ।।६

१=लगावे, सजावे; २=प्रार्थना, ३=झूलना ।

तत उपदेश

साधु समझ सबद विचार, समझे बिना यम की मार ।
समझे जनम मरन निरवार[1] , बाजी जीत बहावै हार ।।१
मानुष-देह पूरा दाव, सत् हर-नाम मनहि बसाव ।
जिभ्या बिना हर-गुण गाव, मुखसूं कहै न बाद गवांव ।।२
बंधन कर्म बंधा लोय, त्योंही छूटना नहीं होय ।
अकरण करे छूटे कोय, अकरण कहै जाने सोय ।।३
अकरण करण है तत्-सार, मनतें पलक नाहि बिसार ।
आवत जात गहो मेरो वीर, सहजै सहज हासी थीर ।।४
ताकू इड़ा धर ले राख, अकल कला ले लेताक ।
पिंगल सुखमन घर लाव, दोऊ उर्ध माहि चढ़ाव ।।५
निर्मल जोति प्रगट होय, दिन और रैन सूझे तोय ।
निरखत[5] तिमिर सब मिट जाय, ताकू बिसराये[6] पल नाय ।।६
माया तीन गुण बिसतार[7], जिन यो ठगो सब संसार ।
तीनों बांध तीनों त्याग, चौथे महल अगम में लाग ।।७
उलटे पवन सिंधु समात, हीरा मुक्ति आवे हाथ ।
यह बिध जान पावे कोय, ताकी मुक्ति सहजै होय ।।८
खोजो मानसरोवर तीर, हंसा जहां गहर गम्भीर ।
मुक्ता चुगे मोनी हंस, पूर्ण-ब्रह्म को निज अंस ।।९
हंसा हंस दोय मिलाय, ते जन मुक्ति को फल खाय ।
ससि और सूर घर एक राख, सत्गुरु कहै सांची साख[9] ।।१०
सांची कहै पानपदास, हरजन लहै[8] चरण निवास ।
तत उपदेश पावे सोय, पानप कहै मुक्ता होय ।।११

१=मुक्त करना, २=टालना, ३=व्यर्थ, निष्प्रयोजन, ४=पकड़ो, ५=देखना, ६=भुलाना, ७=फैलाव, ८=प्राप्त करना, ९=मर्यादा ।

• इति ब्रह्म-विद्या त्रयोदश बाणी •

॥ ॐ ॥

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

-॥- श्री स्वामी मगनीराम जी सहाय, श्री स्वामी पानपदेव जी सहाय -॥-

सर्व संतों की दया

चतुर्दशः बाणी

ज्ञान

"ब्रह्म सकल घट माहि"—यह सब ही शास्त्रों का कथन है। एक परमात्मा सब जीवों के भीतर का आत्मा है पर अज्ञान के कारण मनुष्य इधर उधर खोज में भटकता है और आयू को व्यर्थ गंवाता है। जब परमात्मा का बास अपने अंतर में है तो दर्शन अंतर में ही मिल सकते हैं :—

अगम सुरत घर आपनी, जहां ब्रह्म की ठांव।
दरसन प्रकट पानपा, मैं दरसन पे बलि जाऊं ॥

मनुष्य अपने को नाशवान मानता है क्योंकि वह स्थूल-देह को "मैं" कहकर पुकारता है। "मैं" इन्द्रियों व अन्तःकरण—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार—में से कोई भी नहीं है। वह काया में आत्म-देव इन सब का प्रकाशक एवं प्रेरक है, सत-चित्त-आनन्द है। देह का आडम्बर दूर होने पर जीवन में विकास आता है बुद्धि जाग्रत होती है, स्वच्छन्दता की जगह संयम आता है और आत्मा प्रेरक व भोक्ता स्वयं ही बन जाता है यही ज्ञानी की परिपक्व अवस्था है। मन विषम-मैल बनकर ज्ञान की राह में बाधक है इसको सुरत से पकड़ कर निरत रूपी साबुन लगा कर औघट घाट पर पछाड़ने से यह राग रहित व निर्मल बनेगा। ज्ञान-अग्नि का अंतर में निवास है जो वासना व अहंता के आवरण से ढ़की है जब गुरू कृपा से सुरत-योग द्वारा यह अग्नि प्रज्वलित हो जाती है तब सब भ्रम व संकल्प-विकल्प जल जाते हैं और सर्वतः ज्ञान का प्रकाश फैल जाता है, एक अखण्ड चैतन्य छाया दिखाई देती है। "आप माहि आप खोजा; एकै ब्रह्म सूझा' पानप दास जी को तार्किक ज्ञान अभीष्ट नहीं है उनका कहना है कि शास्त्र पठन व वाद विवाद को ज्ञान नहीं कहते; सुरत का प्रबोधना ज्ञान है:—

कहन सुनन की बातड़ी, योह तो नाहीं ज्ञान।
ज्ञान सुरत प्रबोधना पानप, धरे अगम को ध्यान ॥

शबदी

ज्ञान ध्यान तो एक है, हरि मिलने की राह ।
दूजा ज्ञान कहां से आया, यो जग धक्के खाय ॥१
ज्ञान सोई तासे पावै चरण, सहज मिटत है जनम मरन ।
ध्यान सोई जासूं प्रभु को देखे, कहै पानप सूझे पुरुष अलेखे ॥२
अहुमनी[1] छूटे नही, किस विधि उपजे ज्ञान ।
तृषा[2] नहीं हरि–नाम की पानप, जम-फांसी सहै प्राण ॥३
हृदय में हरि प्रगट है, ध्यान धरे न कोय ।
ध्यान धरे मन सुरतसूं, पानप ताको दरसन होय ॥४
खोज सुरतसूं मन को पल एक, जहां ज्ञान के ढ़ेर ।
अन्तरतम[3] में पानपा, चंचल मन को फेर ॥५
ज्ञान फावड़ा बड़ा अपर बल, सब भरम डाले ढ़ाहि ।
कहै पानप जग भरम भुलाना, गह न सके कोई ताहि ॥६
मैं बढ़ई अपना मन फाड़ूं, कर गह ज्ञान कुल्हाड़ा ।
कहै पानप सोई गुरू मेरा, जिन अपना मन फाड़ा ॥७
आठ पहर मन को घड़ूं, मेरी जाति लुहार ।
सुरत मंडासी से गह पानप, करूं तत्त तलवार ॥८
मैं धोबी अपना मन धोऊं, साबुन सुरत लगाय ।
कहै पानप जग का मन मैला, धो न सके कोई ताय ॥९
मन को धोवे सुरत कर साबुन, औघट घाट पछारे ।
कहै पानप निर्मल भया, मिट जाय देह विकारे ॥१०
ज्ञानी को हरि दर्शन होय, ध्यान लगावै पावे सोय ।
अन्तर माहि राम हमारा, सदा समीप पलक नहीं न्यारा ॥११

१=अहम्मति; २=इच्छा, ३=हृदय ।

क़ुरान कहै गीता कहै, ब्रह्म सकल घट माहि ।
कहै पानप भरमा जगत, ताको खोजे नाहि ॥१

पूर्ण ब्रह्म समीप है, लखे न कोई ताहि ।
भूले क़ाज़ी पंडिता, जन्म अकारथ जाहि ॥२

घट को खोजे अकलसूं, पड़े ब्रह्म को सूझ ।
कहै पानप भरमा जगत, मरा भरम को पूज ॥३

ब्रह्म सब घट एकसा, पहचाने सोई प्यारा ।
कहै पानप ब्रह्म पहचाना नाहि, यह जीव ब्रह्म से न्यारा ॥४

ब्रह्म पहचाने आप में, लग के नेत्र चार ।
कहै पानप उनको दरस है, और भ्रम भूला संसार ॥५

अगम सुरत धर आपनी, जहां ब्रह्म की ठांव ।
दरसन प्रगट पानपा, मैं दरसन पे बलि जाऊं ॥६

मूलबंध नाभि को सोधे, सुरत अगम को तानै ।
कहै पानप अलख अरूप को, सत्गुरू मिल पहचानै ॥७

नाभि निरत सोध के, पवना अगम बसावै ।
पार ब्रह्म स्थान जहां, कहै पानप दरसन पावै ॥८

हम बासी उस देस के, जहां पार ब्रह्म को खेल ।
दीपक देखा अगम में, बिन बाती बिन तेल ॥९

घट में दीपक बलत है, पांच तंत की बाती ।
कहै पानप दीपक सही[1], बलत रहे दिन राती ॥१०

तेल बिना बाती बिना, दीपक बलैं अनेक ।
अन्तर चितवे पानपा, मगन भयो मन देख ॥११

ब्रह्म समीप करक जो उपजे, तो सत्गुरू सेती पावै ।
कहै पानप बुद्धि आतम चीन्हे, तो दर्शन माहि समावै ॥१२

१=सत्य, ठीक ।

अरल

ब्रह्म अग्नि सीतल सदा, जरै सुखी सोई होय ।
ब्रह्म अग्नि में जो जरै पानप, जरा[1] न व्यापे कोय ।।१
ब्रह्म अग्नि में जीव जरावे, बहुरि जीव भवजल नहीं आवे ।
जीवत मरे, सोवत पुनः[2] जागे, लगा रहै चर्णों में आगे ।।२
कहै पानप हरि नामसूं, होय तिहूं लोक में नाम ।
पार ब्रह्म जहां बसत है, जा उलट बसे वा गांव ।।

राग भैरव

कहीं का न होय, तब होयरे कहीं का ।
सोच न विचार जाके, आई न गई का ।।टेक।।
जाके मन माहि, कुछ सेवा न पूजा ।
आप माहि आप खोजा, एकै ब्रह्म सूझा ।।
जाके मन माहि कुछ नीच नहीं ऊंचा ।
आप माहि ब्रह्म देखा, मैला न सूंचा ।।
जाके मन माहि कुछ भेद न भेदा ।
मनहीसूं मनही माहि, मनही को बेधा ।।
तत्त को विचार कर, पानप जन गावै ।
संत–चरण–रज, रहस[3] मस्तकसूं लावै ।।

नमोः देव देवं नमोः ब्रह्म ज्ञानी ।
नमोः सेव सेवं नमोः तत्व ज्ञानी ।।
नमोः संत सतगुरु जिन्हों तत्व दीन्हा ।
नमोः दास पानप जिन्हों तत्व चीन्हा ।।
ॐ लिखंतं पढंतं सुनंतं शब्द विचार करंतं, मुक्ति फलपायंतं ।
श्री गुरु के चरणारविंदं नमस्कारं-नमस्कारं ।।

१=बुढ़ापा, २=फिर, ३=रहसना, प्रसन्न होना ।

॥ ॐ ॥

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

-॥- श्री स्वामी मगनीराम जी सहाय, श्री स्वामी पानपदेव जी सहाय -॥

सर्व संतों की दया

पंचदशः वाणी

स्वाध्याय

"चारों वेद जाल धीमर का;" "वेद कतेबा न जाने ताको, षट-दर्शन नहीं जाने," "काजी, पंडित और षट-दर्शन, ऐ हरिसूं महरम नाहिं", "वेद न जाने भेद"—ऐसे शास्त्र विरुद्ध वाक्य पानपदास जी की वाणी में आये हैं परन्तु आपका अभिप्राय वेद निंदा या खंडन मंडन से नहीं है उन्होंने अपने को षट-दर्शन का सेवी कहा है :—

"षट-दर्शन का सेवी हुआ, मन मनसासूं लड़ता है"। आप अनुभवी संत थे जिनका जीवन आत्मज्ञान की प्रयोगशाला था उन्होंने अपने अनुभवों का ही वर्णन किया है—"जो फल सुरत निरतसूं चाखा, सो फल गाय सुनाया।" कोरा शब्द ज्ञान उनको रुचि-कर न था शास्त्र अध्ययन का वास्तविक लाभ है शास्त्र कथित सिद्धान्तों के अनुसार जीवन को बनाना। शास्त्र का सच्चा पठन पाठन वह है "तापे चढ़ चलिये चढ़ के मंजिल पहुंचे"। मंजिल की पहुँच है आत्मा का साक्षात्कार, जो अनुभवी-वाणी को विचार व विवेक सहित पढ़ने से प्राप्त होता है।

बिना बिचार बिवेक बिन, पढ़े गुणे क्या होय।

आत्म-तत्व चीन्हा नहीं पानप, नरक पड़त हैं सोय॥

फिर पानपदास जी वेदान्ति थे उन्होंने वेदों को "त्रैगुण्य" माना है और जीवों को काम्य-कर्मों के त्याग व गुण रहित बनने का उपदेश दिया है जिससे चित्त की शुद्धि होकर मन में स्थिरता आवे और प्रभु के चरणों में अनुराग बढ़े। आत्मज्ञानी को पठन पाठन में कोई रुचि नहीं रहती वह आत्मा में रमण करता हुआ आनन्द मग्न रहता है।

अक्षर प्रेम अन्तर में लिखिये, बिन कागद कलम स्याही।

कहै पानप बिन मुख जिभ्या पढ़े, जिन हरि की गत पाई॥

शबदी

(वेद) चारों वेद बूझे जो कोई, कहां राम को बासा ।
राम ही राम कहै सब कोई, सहै काल की त्रासा ।।१
प्रगट है परमात्मा, वेद न जाने भेद ।
कहै पानप सब नरक को जाई, बिन देखे वस्तु अभेद ।।२
आतम भेद-अभेद सर्व में, सब काहू को दीखे ।
वेद बखान कहो क्या पाया, बहु गावे और सीखे ।।३
हरजन भेद-अभेद खोज के, पार ब्रह्म गह लिया ।
कहै पानप जब सुरत विचारी, हरि निज दरसन दिया ।।४
चारों वेद जाल धीमर[1] का, जीव फंसा तामे सारा ।
कहै पानप सतगुरू बिना, कौन छुटावन-हारा ।।५
सूझ पड़े सत्संग ते, वेद कतेबा दूर ।
आतम खोजे पानप, सर्व रह्यो भरपूर ।।६
(गीता) हिन्दु तुरक दौऊ हैं अन्धे, घट में हरि नही खोजा ।
गीता कहै क़ुरान कहत है, सो संसार न बूझा ।।७
गीता पढ़ी तो क्या हुआ, गीता पढ़े संसार ।
कहै पानप बिन आतम खोजे, सिर पे यम की मार ।।८
हरि घट में गीता कहै, तासूँ परचा[2] नाहिं ।
कहै पानप बिन प्रभु के परचे, ए सब नरक को जाहि ।।९
क़ाज़ी पंड़ित और षटदर्शन, ए हरिसूं महरम नाहिं ।
आप भरमे और जगत भरमाया, ए चले नरक को जाहि ।।१०
वेद कतेब न आने ताको, षटदर्शन नहीं जाने ।
अगम अगोचर कहै जन पानप, बिरला संत पहचाने ।।११
हरि घट में गीता कहै, पढ़ पढ़ ले सब कोय ।
अक्षर एक विचारा नाही, जन्म जन्म दुख होय ।।१२

१=धींवर, २=परिचय, परख ।

(अक्षर) नाम हृदय ना धरे, कहो पढ़ के क्या किया।
अन्तर अक्षर खोजा नाही, भरम ने धोका दिया ॥१३
अक्षर पावे अक्षर धावे, अक्षर माहि समावे।
कहै पानप अक्षर को खोजे, तो बहुरि न भवजल आवे ॥१४
अक्षर प्रेम अन्तर में लिखये, बिन कागज् कलम, स्याही।
कहै पानप बिन मुख जिभ्या पढ़े, जिन हरि की गत[1] पांई १५
अक्षर अन्तर एक पढ़ लिया, ताका सब विस्तार।
पानप अक्षर परस[2] सुरतसूं, पढ़ना दिया बिसार ॥१६
कथा कथे जो हरि मिले, तो जग हरिसूं मिल जाय।
कहै पानप तब हरि मिले, मनसूं सुरत मिलाय ॥१७
(पढ़ना) पढ़-पढ़-पढ़ पथर भया, लिख-लिख भया ईंट।
अन्तर में लागी नहीं, नेक प्रेम की छींट ॥१८
बिना विचार विवेक बिना, पढ़े गुने क्या होय।
आतम तत्त चीन्हा नहीं पानप, नरक पड़त है सोय ॥१६
पढ़ना गुनना चातरी सब ही जगत करै।
जन मुक्ता पानप कहै, जब अन्तर सुरत जरै ॥२०
सोई गुरू ताका मैं चेला, जो अन्तर सुरत जरावै।
ब्रह्म अग्नि पजार[3] के पानप, तहां को मन ले आवै ॥२१
हृदय खोजे हरि जन सोय, गाय, पढ़े संत नहीं होय।
हृदय खोजे सुरत लगाय, कहै पानप दरसन रहै समाय ॥२२
यो मन स्थिर तब रहै, पकड़ अन्तर में लावै।
कहै पानप मनसा को संग ले, ताकों हर हर नाम पढ़ावै ॥२३
हरि दर्शन प्रगट रहै, सब के देखन माहि।
कहै पानप अंधला जगत, ताकू सूझे नाहि ॥२४
एसा यो अंधला जगत, आगे वस्तु न सूझे।
.कहै पानप गुरू सैन करत है, ताकी सैन न बूझे ॥२५

१=अवस्था, दशा, २=स्पर्श, छूना, ३=जलाकर।

(अंधा) हृदय अंधा सोई अंधा, अंधे अंध न कहिये ।
पानप कहै सुनो भाई साधो, अंधे अर्थ क्या लहिये[1] ॥२६

अर्थ सोई तापे चढ़ चलिये, चढ़ के मंज़िल पहुँचे ।
पानप कहै सुनो भाई साधो, अन्ध अर्थ क्या सूझे ॥२७

तरवर[2] मीठा फल भी मीठा, चढ़ना कठिन सी बात ।
सुरत बांध हरिजन चढ़ें, सो वा फल को खात ॥२८

जो फल सुरत निरतसूं चाखा, सो फल गाय सुनाया ।
कहै पानप जग हृदय अन्धा, मरम किन्हीं नहीं पाया ॥२९

किस पुकारूं किस कहूँ, कान करे नहीं कोय ।
घट में साहब रम रहा पानप, भरम रहा सब लोय ॥३०

सांच गहा सोई कहा, जग बहरा माने नाहि ।
पानप सांच गह तिरे, जग अन्धा अहला जाहि ॥३१

सांच डिगाया ना ड़िगे, नहीं झूट को पाल्[3] ।
कहै पानप एक सत बिन, जगत पड़ा भ्रम-जाल ॥३२

सांच कहूँ तो मारिये, झूट कहा न जाय ।
कहै पानप तू कहो सांच ही, हरि मेरा ले छुटाय ॥३३

संतो ने बानी कथी, परार्थ[4] के हेत ।
कहै पानप कोई भूला बिसरा, खोज शब्द को लेत ॥३४

हरि को देखा दृष्टि भर, प्रगटी अनुभव बानी ।
कहै पानप-जन प्रभु रंग राचे, गावे अकथ कहानी ॥३५

बानी तो जानी नहीं, ठानी और और ।
क्या भया बानी पढ़ी, लखा न घट का चोर ॥३६

कवी तो करें कवीसरी, अन-देखी सब बात ।
अन्ध पिछोड़े थोतरे, कहै पानप उड़ उड़ जात ॥३७

काग कवीसरी एक मत, झूट झूट आहार ।
वस्तु अपावन[5] ते भाखें तिनका क्या एतबार ॥३८

१=प्राप्त, २=वृक्ष, ३=पेरैं ४=दूसरों के हित के लिये, ५=अशुद्ध

काग हंस अन्तर बड़ा, जग में ना पहिचान।

हंस थरि काग चपल, जन पानप देख बखान ॥३६

अनदेखा अनचाखा भाषे, नरक पड़त है सोइ।

कहै पानप कुछ स्वाद न जाने, मिथ्या भाषे लोइ[3] ॥४०

चाखा नाहि देखा नाहि, बहु विध स्वाद बखानै।

कहै पानप किसे समझाऊं, ए सब नरक को जानै ॥४१

आपा उलट आप में देखे, सो जन बिरला कोई।

अनचाखे का स्वाद बखाने, पानप जग में झूठा सोई ॥४२

मन की छुटै न कालिमा[1], ताते नरक को जाय।

राम नाम सुमरे नही पानप, भरम में रह्यो लुभाय ॥४३

पढ़े गुने क्या होत है, पढ़े गुने संसार।

कहै पानप चाहे मुक्ति को, तो हरदम नाम सिंभार ॥४४

जबलग आपा नहीं विचारे, तबलग काल सबन को मारे।

जिन योह आपा तत्त विचारा, कहै पानप सोई गुरू हमारा ॥४५

राग धनाश्री

रटा नहीं हरि–नाम, कहा तें गायो रे ॥टेक॥

राग रागनी चित धर लीनी, स्वादसूं जन्म गंवायो रे ।१

भूले मन भटके माया में, आतम मरम न पायो रे ।२

आत्म-राम अकल घर सेवे, जाकू अलख पुरुष दरसायो रे ।३

कहै पानप जो आतम सेवे, ताको आवागमन नसायो[2] रे ।४

१=अंधेरा; २=नष्ट करना, भगाना, ३=लोक।

॥ ॐ ॥

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

-॥- श्री स्वामी मगनीराम जी सहाय, श्री स्वामी पानपदेव जी सहाय -॥-

सर्व संतों की दया

षोड़श: बाणी

निर्मल

संतों का आदेश है कि हरि नाम हृदय में धारण किये बिना निर्मलता प्राप्त नहीं होती है—"निर्मल नाम धरा नहीं हृदय, निर्मल केह विध हुआ।" तीर्थ, व्रत, दान, जप—सब शुभ कर्म हैं परन्तु इनका महत्व तब ही है जब मन एकाग्र हो और बुद्धि शुद्ध बने। यह सब बाह्य उपचार हैं, साधन मात्र हैं; साध्य नहीं। साध्य है मन के निरोध द्वारा आत्म साक्षात्कार।

सब कर्म फलदायक हैं क्योंकि कर्म गुणों से भरे हैं। आवश्यकता है गुण रहित होने की। गुणों से माया का आच्छादन बना है। बिना गुण त्यागे माया का पट नहीं टूटता और हरि दर्शन प्राप्त नहीं होते। बिना हरि दर्शन के मुक्ति नहीं :—

"हरि नाम बिसारा हृदय, सो नर कहीं का न हुआ।
तीर्थ व्रत जप तप करके, कहै पानप बह बह मुआ॥"

संत इन्द्रिय-भोगों से मन को हटा कर प्रभु के प्रेम में लगाते हैं वह निरन्तर प्रभु का ध्यान करते हैं और प्रभु की अमीधारा का रसपान करके हृदय की प्यास बुझाते हैं इनके लिये बाह्य साधनों का महत्व नहीं रहता। "मन मैला तो सब तन मैला।" तन धोने से मन अपने विकार नहीं तजता। त्रिकुटी में गंगा, यमना व सरस्वती का त्रिवेनी स्नान मौजूद है वहां आठों पहर का पर्व है। सुरत व मन वहां नहाकर शुद्ध व निर्मल बनते हैं। मन के साथ तन का मैल धुल जाता है। यही सच्ची निर्मलता है सब तीर्थ काशी, हरिद्वार आदि अपने घट में हैं दसवें द्वार को द्वारका कहते हैं सुरत वहां पहुंच कर हंस रूप हो जाती है और मुक्ता चुगती है तब माया उसको नहीं व्यापती।

"हम तो बूड़े अथाह में, जहां बिन पानी दरियाव।
वहां के बूड़े पानपा, हरि दर्शन सहज सुभाव॥

शब्दी

(तीर्थ) हरि नाम बिसारा हृदय, सो नर कही का न हुआ ।
तीर्थ, ब्रत, जप, तप, करके, कहै पानप बह बह मुआ[2] ॥१
हरि का सुमरन ना करे, तीर्थ दौड़ा जाय ।
बिन प्रतीति भटकता डोले. यम के हाथ बिकाय ॥२
हरि का नाम धरा जिन हृदय, सो काहे को तीर्थ जाय ।
घट में आतम चीन्हा पानप, अष्टयाम तहां नहाय ॥३
भवजल में तीर्थ घने, मैं किस किस तीर्थ जाऊं ।
मन विकार तजता नही, कहै पानप कहाँ कहाँ नहाऊं ॥४
अष्ट-कंवल-दल अंनर भीतर, तीरथ एक अनूप ।
सुरत धोय मन निर्मल होई, परसू देव अरूप ॥५
पार-ब्रह्म घट में ही छोड़ा, तीरथ बह बह मुआ ।
अन्तर खोज सुरतसूं पानप, ताको दर्शन हुआ ॥६
जीव हद[1] का हरि कैसे पावै, राम हदसूं आगे ।
कहै पानप हरजन सोई, पहले हद को त्यागे ॥७
हद तजी बेहद में खेला, अलख पुरुष दरसाया ।
कहै पानप नैन नासिका अग्रह, राम रहै नित छाया ॥८
तीर्थ की आसा नहीं, ब्रत गया सब भूल ।
कहै पानप नैन नासिका अग्रह, रहै पहुप[3] से फूल ॥९
राम नाम के आसरे, मनसूं सुरत मिलाई ।
कहै पानप हरि दर्शन हुआ, यो सतगुरू जुगत बताई ॥१०
नही भरोसा सत का, जग मिथ्यासूं लाग मरा ।
कहै पानप तीर्थ ब्रत कर, कहो कौन कौन तिरा ॥
काम न छूटा क्रोध न छूटा, छूटा लोभ न मोह ।
कहै पानप तीर्थ भरमाया भोंदू, क्या फल लागा तोहि ॥१२

१=सीमा, २=मरा, ३=फूल ।

काम क्रोध लोभ मोह की, बांध लई है पोट ।
इनका भय मानू नहीं पानप, पकड़ी हरि की ओट ॥१३
हम तो बूड़े अथाह में, जहां बिन पानी दरयाव ।
जहां के बूड़े पानपा, हरि दर्शन सहज सुभाव ॥१४
हिन्दु करे व्रत और तीरथ, और करे सेवा पूजा ।
कहै पानप अंतरयामी अंतरमाहि, सो सुपने ना सूझा ॥१५
कोटिक जप-तप तीर्थ कर, साहब दृष्टि न आवैं ।
पानपदास तुरत होय दरसन, जो ब्रह्म-अग्नि में तपावै ॥१६
ब्रह्म-अग्नि में मन तपे, त्रिबेनी नित नहाय ।
कहै पानप वा संत को, जुरा मरन मिट जाय ॥१७
नैनन आगे गंग है, तहां न कोई नहाय ।
कहै पानप अलपा नदी, सब जग दौड़ा जाय ॥१८
कर्मों छाई आत्मा, मल लिपटानी सोय ।
कहै नानप अलपा के नहाऐ, निर्मल केह विध होय ॥१६
मोहि भरोसा नाम का, काया कांसी खोजी ।
कहै पानप उस अगम महल में, ज्योति निर्मल सूझी ॥२०
वह तो कांसी कहन की, सांची कांसी काया ।
कहै पानप निर्मल भया, जो तिरबेनी चढ़ नहाया ॥२१
त्रिबेनी चढ़े सुरत मन, परबी अष्टोयाम ।
लौ लागी छूटे नहीं, कहै पानप दरसन राम ॥२२
अकल कला अराध के, कर परमातमसूं मेला ।
कहै पानप अलख पुरुष को, दरसै सतगुरू का चेला ॥२३
जाऊँ जगन्नाथ नहीं द्वारिका, ना बद्री कैदार ।
घट में आतम लखा पानप, तुरत भया दीदार ॥२४
दसवें द्वारे जहां हरिद्वारा, तहां कोई न जाय ।
कहै पानप हरिद्वार भर्म को, दोड़ दोड़ जग नहाय ॥२५

हमरे घर में हरि को द्वारा, बारामासी मेला ।
बाहर कहां हरिद्वार है पानप, जगत फिरे है भूला ॥२६
हमरो नहान सुन्न के सरोवर, जहां आठ पहर को नहाना ।
कहै पानप आतम का दर्शन, कहीं एक पल नहीं जाना ॥२७
हरि दर्शन को कोई न चाहै, कर रह्यो मते घनेरे ।
सुन्न सरोवर अन्तर पानप, कोई बिरला संत बसेरे ॥२८
संत तलासी सुरत के, सत्‌गुरू गम मन पाया ।
बांध सुरत के तारसूं पानप, सुन्न में जाय बसाया ॥२९
सुन्न कहा मस्तकसूं नीचे, नैन नाससूं ऊंचे ।
कहै पानप वहां हरिजन नहाय, पलपल नहाय सूंचे ॥३०
दो नेत्र बिच नासिका, जहां सरोवर मान ।
कहै पानप सत्‌गुरू मिले, सुरतसूं लेत पहचान ॥३१
सुन्न देस में राखे बंध, निसदिन ताके सत्‌ की संघ ।
सत्‌ की संघ तके सुख होय, अलख दरस बिछड़े नहीं कोय ॥३२
मन थके मनसा थके, सहज स्वांस थक जाय ।
चाल पलटे पानपा, यम न सतावे ताय ॥३३
घट घट अमृत सर भरे, पीवे कोई नाहि ।
कहै पानप अमृत तजो, जगत प्यासा जाहि ॥३४
निकट नीर प्यासा मरे, यही अचंभा मोहि ।
भर भर दृष्टि सुरत पीवे पानप, बहुरि प्यास नही होहि॥३५
मन धोय तन निर्मला, तन धोय मन मैला ।
कहै पानप तन कहां लग धोऊं, विषम मैल तन फैला ॥३६
मन मैला तो सब तन मैला, तन धोवे सब कोय ।
तन धोय मन उज्जल नहीं, पानप मन धोवे न कोय ॥३७
जब लग भटके सुरत मन, तब लग गंदम–गंदा ।
कहै पानप निर्मल तब ही जानो, थिर होय सूरज चन्दा ॥३८

कर स्नान सुरत के जलसूं, मन सागर में नहावैं।
पानप कहैं जुगत कर ऐसी, आवागमन नसावैं ॥४१
निर्मल नाका नाम का, सतुगुरू दिया बताय।
चितवन के तो निकट ही, पानप जिनकी सुरत समाय ॥४२

राग देव गंधार

मन तोही अन्त नही तर जाना।
मन को खोज ले मनसासूं, मनमाहि ठिकाना ॥टेक॥
मन ही में गंगा मन ही में यमना, मन ही में सात समंदा[1]।
मन ही धरनी[2] आकास, मन ही में सूर्य चन्दा ॥१
अडसठ तीर्थ या मन माहि, तामें संत करें स्नाना।
सुरत नहाय निर्मल होय, अचरज देख बखाना ॥२
कस्तूरी जैसे नाभि मृग के, बन बन ढूंड़त ड़ोले।
जग बौरा प्रभु अन्तरयामी, मनसा अन्त न खोले ॥३
निर्मल धाम प्रगट देखन में, जिन परसा तिन जाना।
कहै पानप सुनो भाई साधो, छूट गया भरमाना ॥४

राग भैरव

नहाय क्यों न बौरा मन नहाय क्यों न बौरा।
नैनन आगे गंग है, नहाय क्यो न बौरा ॥टेक॥
संग अमृत-रस तज मन भौंदू, अलपा नदी को जात है तू दौरा।१
गंगा यमना और सरस्वती, बही जात हैं संग तेरे धोरा ॥२
जहां नहाय तन निर्मल होई, यह मनबा मैल त्यागेंगो तोरा ॥३
अजहुँ समझ मेरे मन भोंदू, जन पानप तेरा करत निहोरा[3] ॥४

१ = समन्द्र, २ = पृथ्वी, ३ = बिनती।

ज्ञान सुखमनी

दोहा—नाम बिना निर्मल नहीं, जो कोटिक तीर्थ नहाय ।
कहै पानप थिर नही सुरत मन, जन्म अकारथ जाय ॥
घट में तीर्थ निर्मला, मानसरोवर घाट ।
कहै पानप मनसा ले धोवे तो सहज खुले कपाट ॥

सुख सागर है अगम अपार, तन मन मध्य वस्तु है सार ।
सुख सागर में जो कोई नहाय, ताका सकल भ्रम मिट जाय ॥
सुख सागर में पवन समोई. ममना जल को डारे धोई ।
ऐसी युक्ति भक्ति की जानै, पानप ताको सत्गुरू माने ॥

दोहा—सुरत बहै और मन बहै, कारज सरे न कोय ।
कहै पानप कारज जब सरे, राखे अगम समोय ॥

राग धनाश्री

तेरा मन मैला, तन मैला, कहाँ तू नहायोरे ।
निर्मल नामसूं निर्मल होता, सो हृदय ना बसायों रे ॥टेक॥
अवश[1] तीर्थ नहाना डोले, दूना मैल बढ़ायो रे ।१
मन को खोज सुरतसूं धोवे, अलख दर्श जिन पायो रे ।२
कहै पानप मूरख नही समझे, कोट भांति समझायो रे ।३

१ = लाचार

नमोः देव देवं नमोः ब्रह्म ज्ञानी ।
नमोः सेव सेवं नमोः तत्व ज्ञानी ॥
नमोः संत सतगुरु जिन्हों तत्व चीन्हा ।
नमोः दास पानप जिन्हों तत्व चीन्हा ॥
ॐ लिखंतं पढंतं सुनंतं शब्दं विचार करंतं, मुक्ति फलपायंतं ।
श्री गुरु के चरणारबिंदं नमस्कारं-नमस्कारं ॥

ॐ

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

-॥- श्री स्वामी मगनीराम जी सहाय, श्री स्वामी पानपदेव जी सहाय -॥

सर्व संतों की दया

सप्तदशः वाणी

माया

मनुष्य अपनी आयु को व्यर्थ खो रहा है। बालक-पन खेल में जाता है। तरुण आई कि विषयों ने घेर लिया। वृद्ध होने पर तृष्णा अति बढ़ जाती है यहां तक कि उठते बैठते खाते सोते—हर समय मनुष्य तृष्णा के साथ बहता रहता है। भोगों को भोगने से तृप्ति नहीं होती अपितु भोगों की इच्छा और प्रबल हो जाती है यही कारण है कि संसार में जिसको देखो वही दुःखी व अशान्त दिखता है। किसी को अन्न वस्त्र गृह का कष्ट है, कोई संतान के लिये रो रहा है किसी को मान प्रतिष्ठा की चिन्ता लगी है कोई भी अपनी स्थिति से संतुष्ट नहीं है चिन्ता रूपी अग्नि हर एक को जला रही है। संसार में इतना दुःख चिन्ता व अशान्ति होने पर भी हर प्राणी तुच्छ भोगों में रम रहा है इसी का नाम माया है।

माया भगवान की शक्ति है जिसके द्वारा सृष्टि की रचना हुई है संसार में माया का बंधन इतना गाढ़ा है कि जीव जन्म लेकर मोह जाल में फंस जाता है दुःख क्लेश व कष्ट पाने पर भी संसार के भोगों में लिप्त रहता है केवल हरि भक्त ही इससे बच पाते हैं :—

कहै पानप माया मोहिनी, जिन मोहा सब संसार।
बड़े बड़े सुर-नर मुनि-जन मोहे, रही नाम लीनसुं हार ॥

हरि भक्त भगवान के नाम स्मरण में लौलीन रहते हैं वह समस्त सुख व आनन्द अपनी आत्मा में प्रतीत करते हैं बाह्य वस्तुओं में सुख दुःख दोनों नहीं हैं जिनको यह ज्ञान हो जाता है वह संसार में उदासीन बन कर रहते हैं:-

जो जन कोई ब्रह्म पहिचाने, यह माया ताका भय माने।
माया ब्रह्म का मर्म जिन जाना, कहै पानप मुक्ति पहचाना ॥

आशा से कामना उत्पन्न होती है; कामना में बाधा पड़ने से क्रोध व काम की पूर्ति से लोभ उत्पन्न होता है; क्रोध व लोभ से मोह बढ़ता है; मोह से बुद्धि नष्ट हो जाती है; सत् असत् का विवेक नहीं रहता। संसार परमात्मा की लीला है मनुष्य यह भूल जाता है। संसार असार है, इसके सुख क्षण-भंगुर हैं, सुख शान्ति का भंडार आत्मा है अतः माया मोह में न फंस कर आत्म-दर्शन में लगने से शान्ति मिलती है :—

हरि चरणों में चैन है, जो कोई लिया चाहे।
सकल निरंतर पानपा, सुरत लगाय के पावे ॥

माया के आवरण के कारण हृदय स्थित भगवान दीख नहीं पाते। सत-रज-तम तीनों गुणों से माया का आच्छादन बना है। माया रहित होने के लिये सतोगुण अर्थात् शुभ नियमित कर्मों से रजोगुण व तमोगुण अर्थात् काम्य कर्मों व काम, क्रोध, लोभ, मोह का दमन करना होगा फिर सतोगुण भी फलदायक है संसार में फंसाने वाला है इससे ऊपर उठकर अगम में समाना चाहिये तब ज्ञान का सूर्य अन्तर में उदित होकर अविद्या के अंधकार को मिटायेगा और सर्वत्र भगवान दिखेंगे :—

गुण अवगुण सब काज बिगाड़े, ता में फंसा सकल संसार।
कहै पानप जो गुण को त्यागे, तो उतरे भवजल पार ॥

गीता का आदेश भी यही है कि यदि माया को तैर जाना चाहते हो तो प्रभु की शरण ग्रहण करो अर्थात् भगवान की शक्ति के पीछे निर्माता परमेश्वर को पहिचानो तब यह भेद जनक मोह नष्ट हो जायेगा।

शबदी

सब ही साहूकार हैं सब की गांठी लाल।
गांठ खोल देखे नहीं, तासो फिरे कंगाल ॥१

लेने को है घर की माया, जो खोजे सो पावे।
पल पल बहे कहे जन पानप, सत्‌गुरु–शब्द गह लावे ॥२

मायासूं सब जग बंधा, और संतों माया बांधी।
माया ने सब जग खाया, संतों राखी सत की सांधी ॥३

माया का आदर करे, हरि को दे धक्के।
पानप कहै सुनो भाई साधो, राम कौन बिध रक्खे ॥४

बैठा राम तमासा देखे, जग को माया नाच नचावे।
और राम की दृष्टि न फेरे, यम फंदे को धावे ॥५

पीठ लगी है सौदा करले, उठी जात है पीठ।
कहै पानप वहां लाल बसत है, लेके गाढ़ी डीठ[1] ॥६

अपना जान सर्व सुख दीने, यो याद करेगा मेरी।
संसारी माया मद माता, नहीं यादसूं नेरी[2] ॥७

जब लग देस बसे तिरगुन के, तब लग यम की फांसी।
आवागमन कौन बिध छूटे, पानप को यो हांसी ॥८

तीन गुनन के देस बसत है, हरि को कैसे पावे।
तीनों त्याग तके चौथे को, तब हरि दरस आवे ॥९

तीन गुनन सों हरि-जन भाजा, अगम झोंपडी छाई।
वहां चढ़त राम को सुमरे, पानप तहां गुण पहुँचे नाही ॥१०

पांच तत्त गुन तीन को, आगे घेर बसाव।
कहै पानप सहज थके, तू चरनों सुरत लगाव ॥११

या जग को कैसे समझाऊँ, हरिसों हितु[3] बिसारे।
कहै पानप हरि अगम न खोजे, मिथ्यासूं सिर मारे ॥१२

१=ज्ञान दृष्टि, २=निकट, ३=हितेषी, स्नेही

शब्द

बालक-पन खेल के खोया, तरुण विषय[1] विपरीत[2] ।
बृद्ध भया तृष्णा ने घेरा, पानप करी न हरिसूं प्रीति ॥१३
बालक भया तरुण भया, बृद्ध अवस्था आई ।
कहै पानप हरि-नाम बिसारा, तो भी ड़रे मरन से नाही ॥१४
तृष्णा सोवे, तृष्णा खाय, तृष्णा दौड़ कमाने जाय ।
तृष्णा साथ नर बह बह मरे, कहै पानप नाम चित्त न धरे ॥१५
आसा मरी तृष्णा मरी, मनसा राखी थीर ।
कहै पानप वह संत अघाय[4] , जिन स्थिर किया सरीर ॥१६
जे जन भय नाम लवलीना, खूंदे[1] माया खाय ।
कहै पानप जोरे नाम के, आपा रहे बचाय ॥१७
सगुन माया निरगुन ब्रह्म, घट घट व्यापक है निरवलंब[5] ।
सब को देखे, सब को दीखे, पानप देखे अकलसूं दरस अलेखे ॥१८

ज्ञान सुखमनी

दोहा—तृष्णा माया मोह में, सुरत बहै दिन रैन ।
कहै पानप गुरू शब्द बिन, यह क्यों पावै सुख चैन ॥१
तृष्णा मारो ज्ञानसों, है सुख चैन तैयार ।
कहै पानप साँचे नाम को, हृदय धरो संभार ॥२
जग भूला माया के धोके, जाता जीव मुक्ति को रोके ।
ताहीसूं यह जगत भुलाना, ब्रह्म समीप मर्म नहीं जाना ॥१
जो जन कोई ब्रह्म पहिचाने, यह माया ताका भय माने ।
माया ब्रह्म का मर्म जिन जाना, कहै पानप मुक्ति पहचाना ॥२

१=कुवसना, २=भोग, ३=विरुद्ध, ४=तृप्त, ५=अधार रहित

नाम लीला

दोहा—घट खोजो नर बावरे, तामे अलख अपार ।
पानप पाया सत्‌गुरू सेती, त्रिकुटी संध मझार[1] ॥
यह बिधि सुमरन जो जन जाने, माया ता जन का भय माने ।
माया जग को बहु बिध छलै, जन चरनों ते छिन नहीं टलै ॥
नाम भरोसे हरिजन खेलें, हरि चरनन में जन सिर मेलें ।
हरिजन माया से नहीं डरें, करनहार चाहे सोई करें ॥
दोहा—करन-हार करतार है, और न दूजा कोय ।
कहै पानप प्रभु चरनों में राखो, बड़ी लगन यो मोहि ॥
मोह फंसा हरि भक्ति न होई, मोह फंद फांदा जग लोई[2] ।
माया मोह प्रभुसूं दूर, मोह तजै हरि रहत हजूर[3] ॥१
माया मोह त्याग मेरे भाई, मोह त्यागा तिन भक्ति कमाई ।
मोह फंसी मनसा नित बहै, मोह माया पल थिर न रहै ॥२
जब लग मोह नहीं हरि पावं. मूरख नर योंही ग्रह तज जावै ।
हरिजन ग्रह में रहत उदासी, सुमरन सहित कटै यम फांसी ॥३
माया मोह तजे घर माहि, आई बरते संसय नाहि ।
आई गई सोच नही करे, सो जन निश्चय भवजल तिरे ॥४
ऐसे संत रहैं जग माहि, जल में कमल बिधे[4] सो नाहिं ।
जल में कमल रहै नित ऊंचा, जग में संत रहै यो सूंचा ॥५
जो जन हरि के चरनों लागा, माया मोह तिन्होंने त्यागा ।
और उपाय न माया छूटे, हरि सुमरन योह फाँसी टूटे ॥६
दोहा—कहै पानप सत्‌गुरू मिलै, तब पावै चरन निवास ।
आतम सेव सुरतसूं, तब होय गमन विनास[5] ॥७

१=मध्य, २=चादर ऊनी, ३=प्रस्तुत, ४=फंसना, ५=नष्ट ।

राग विहाग

अरे मन तज सोवन की बान ।
जन्म अनन्त धर दुख पावेगो, जो मानें तो मान ॥टेक॥
मानुष जन्म सा रतन पाय के, सोवत है रुचि ठान ।
औसर पाय हरि को बिसरो, यम मारेगो आन ॥१
माया लाय हृदय में राखो, तब माया अपनी जान ।
जो माया हृदय नहीं राखी, जीव होय कंगाल मरजान ॥२
जिन माया हृदय में संची, सोई है साह निधान[1] ।
स्वांस स्वांस और पल पल माहि, हरि सुमरन ही को काम[2] ॥३
सत्‌गुरु शब्द विचारो जागा, अर्ध उर्ध स्थान ।
कहै पानप यो जगत न मानै, यम फंदे पड़ें प्राण ॥४

राग वलावल

आवे जाय सो माया रे, साधो आवे जाय सो माया ।
रूप धरे सो दर्शन नाही, सब भरम की छाया ॥टेक॥
करता एक मरे ना जन्में, ना आवे ना जाई ।
वह तो हिन्दु तुर्क का साहब, सब घट में रहो समाई ॥१
रहै अदिष्टि दिष्टि[4] नहीं आवै, सर्वदिष्टि भरपूरा ।
दिष्टि समानी उल्टी दिष्टि में, तिनसूं सदा हजूरा ॥२
जो उपजा और जग ने देखा, सो परलै में आया ।
जो कोई वाकी आस करै, धर चौरासी में छाया ॥३
तन मन खोज निरन्तर[3] खेले, ताको दरसन सूझा ।
कहै पानप मोहि प्रतीति न ताकी, उपजै खपै सोई दूजा ॥४

१=खज़ाना, २=इच्छा, ३=लगातार, ४=दृष्टि ।

नमोः देव देवं नमोः ब्रह्म ज्ञानी ।
नमोः सेव सेवं नमोः तत्व ज्ञानी ॥
नमोः संत सतगुरु जिन्हों तत्व दीन्हा ।
नमोः दास पानप जिन्हों तत्व चीन्हा ॥
ॐ लिखंतं पढंतं सुनंतं शब्द विचार करंतं, मुक्ति फलपायंतं ।
श्री गुरु के चरणारविंद नमस्कारं नमस्कारं ॥

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

-॥- श्री स्वामी मगनीराम जी सहाय, श्री स्वामी पानपदेव जी सहाय -॥-

सर्व संतों की दया

अष्टादशः वाणी

अहुमनी

विश्व में सब अनर्थों का मूल कारण है अहम्मन्यता यानी अपने को बड़ा मानना। मैं उच्च कुल का हूँ, मैं धनी हूँ, मैं विद्वान हूं, मैं बलवान हूँ— इन सब बातों पर हम फूले नहीं समाते; पर यह कितना थोता है अहंकार ! श्रेष्ठ कुल में जन्म प्रभु की कृपा से मिलता है, इस में हमारा श्रय कुछ नहीं। इसका घमंड मूर्खता है। शारीरिक बल में कितने व्यक्ति हम से कहीं अधिक बलवान हैं। रंग रूप का क्या गर्व—हाड़, मांस, मल, मूत्र, रक्त, कफादि से शरीर भरा पड़ा है इन में आकर्षण की कौनसी वस्तु है। प्रकृति का कण कण सुन्दरता से ओत-प्रोत है। हरे भरे पहाड़, चहचहाते पक्षी, सुगंधित लतायें, शीतल जल के झरने कितने मोहक हैं इनके सम्मुख हमारा रूप किस गिनती में है! विद्या पर गर्व करना ना समझी है संसार में अनेक ज्ञानी, विद्वान भरे पड़े हैं फिर विद्या से आनी चाहिए नम्रता, आधीनता, विनय। धन, पद, मान, प्रतिष्ठा—सब क्षणभंगुर हैं समय आने पर धूल में मिल जाते हैं।

ऐसे भाव प्रायः सब ही में दीख पड़ते हैं यह अहंभाव मनुष्य से नाना प्रकार के छल-छिद्र कराता है। एक एक वस्तु का अहंकार नसों में घुसा है जो अवसर पाकर प्रगट हो जाता है अतः अहम्मति का नाश किये बिना सांसारिक व परमार्थिक दोनों उन्नति सम्भव नहीं हैं।

हरि बिसारा फूला फिरे, अहुमनि लिये साथ।

कहै पानप गह नहीं दीनता, यम पे बांधा जात ॥

यम से बचने और हरि को पाने के लिये दीनता धारण करनी चाहिए "हरि है दूर गरूरसूं" विनय पूर्वक सब की सेवा करने से, और निःस्वार्थ सब से प्रेम करने से भगवान मिलते हैं यही सच्चा बड़पन है।

आप आप में सब बड़े, बड़ा न चीन्हे कोय।

कहै पानप साहब बड़ा, चीन्हे सो बड़ा होय ॥

शब्द

हरि बिसारा फूला फिरे, अहुमनी[३] लिये साथ ।
कहै पानप गह नहीं दीनता, यम पे बांधा जात ॥१
रे मन बड़ा न हूजिए, बड़ी बड़ों पे मार ।
जो चाहे यमसूं बचा, हरदम नाम सिंभार ॥२
मन के मते ना चालिये, मन है मोटा दूत ।
ले बैठे दरयाव में, जाय हाथ से छूट ॥३
मन मोटा छोटा नहीं होय, खोटा ले डूबत है सोय ।
जो जन मन को नन्हा करे, कहै पानप सोई भवजल तिरे ॥४
नन्हा हुए कारज सरे, सो नन्हा हुआ न जाय ।
कहै पानप हुए बड़े, चले पाय[२] जंजीर बंधाय ॥५
आप गंवाये खोज जिन कीना, दास होय हरि पाय ।
कहै पानप जो बड़े भए, सो नहचै नरक समाय ॥६
सब ही बड़े बड़ा नहीं खोजे, ताते इनके संग न जाऊँ ।
कहै पानप घट आतम प्रगट, मैं ताका दरसन पाऊँ ॥७
आप आप में सब बड़े, बड़ा न चीन्हे कोय ।
कहै पानप साहब बड़ा, चीन्हे सो बड़ा होय ॥८
करतार एक करे सोई होय, कर्ता दूजा और न कोय ।
साहब चाहे सोई करे, तो पानप काहे को संसा मरे ॥९
कर्ता चाहे सो करे, सब कुछ करने हार ।
जो कोई कहै मैं किया, पानप ताहि के मुंह छार[१] ॥१०
करनहार सब कर रहा, यो है कौन बिकारा ।
मैं मैं करते मरा पानप, मैं मैं करे जग सारा ॥११

१=धूल २=पैर, ३=अहम्मति, अहंभाव,

में मेरी ममता तजे, आई गई न चित्त ।
कहै पानप मन थिर रहै, ताहि मिले हरि मित्त[1] ॥१२
मै कू मार गरीबी उर धरे, जो गरीब कोई होय ।
सची गरीबी सोई जानिए, आपा मेटै सोय ॥१३
हरि है दूर ग़रूरसूं, आधीनी हरि नेरा ।
छोड़ ग़रूर अंतर में राचै, कहै पानप हरि चेरा ॥१४
दुरमत नासी कारज हुआ, दुरमत डारी धोय ।
कहै पानप दुरमत ना मिटी, बूड़ मुआ सब कोय ॥१५
निन्दक हमको लागे प्यारा, नित उठ धोवे मैल हमरा ।
धोवे मैल मेहनत नहीं मांगे, उस निन्दक को कैसे त्यागे ॥१६
निन्दक का बहू आदर कीजे, निन्दक मिले तो बैठक दीजे ।
सत्संग मिले कभी फिर आवै, कहै पानप निन्दक नर्क न जावै ॥१७
जिन बूझे तिनको हरि सूझा, आपा मलयामेट किया ।
न कुछ ज्ञान सत्गुरु दियो मारग, पानप हरि-रस जान पिया ॥१८
आपा गवायें आप तब पाए, जो कोई आपा गंवावे ।
घटी बढ़ी और ऊंची नीची, कहै पानप चित्त न लावे ॥१९
नन्हा होय गुरु ज्ञानसूं, ताको मरना सूझे ।
सुरत लाय मनकू कूटे, झीना होय हरि पूजे ॥२०

१=मित्र, २=

॥ ॐ ॥

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

-॥- श्री स्वामी मगनीराम जी सहाय, श्री स्वामी पानपदेव जी सहाय -॥-

सर्व संतों की दया

एकोनविंशः वाणी

पंथ

अपने लक्ष्य पर पहुँचने के लिये पग चाहिये। जीव जिस मार्ग से होकर आया है लोटने के लिए वही सुगम पग है जो कि अपने अंतर में ही है :— "पंथ अपंथ बिन पग चढ़ना, कहो किसका पंथ बतावे।

पानप कहै सुनो भाई साधो, घर लुटे घर माहि समावे॥"

सुरत सुषुम्ना नाड़ी में होकर शब्द रूपी डोर द्वारा नीचे उतरी है इसी पग से सुरत अपने स्थान को लौट सकती है। यह पग नाक की सीध में है "सुरत बांध उलटा चढ़े, नक सुध पंथ निहार" सन्तों के मतानुसार सुरत का उतराव इस प्रकार है—सुरत शब्द रूप होकर अगम[1] व अलख[2] स्थानों से होती हुई सत्य लोक में आई। यह वह लोक है जहां सन्त बास करते हैं

"सत्य लोक अमरापुर नगरी, जहां सन्त क्यो बासा"

यहां से भंवर-गुफा[3] व महासुन्न[4] में को होकर सुन्न[5] में ठहरती है; यह आत्मपद है—यहां से ब्रह्मांड व पिंड में फैलती है। सुन्न से नीचे त्रिकुटी[6] स्थान है जिसको गगन भी कहते हैं और सुमेरू पर्वत भी कहते हैं। इसकी चोटी का नाम ब्रह्मरन्ध्र है यहीं कैलाश व मानसरोवर हैं। जीव यहां पहुंच कर हंस गति को पाता है। त्रिकुटी स्थान से सूक्ष्म तीन गुण व पांच तत्व व निर्मल माया प्रगट होते हैं। दोनों आंखों के बीच में बिन्दु[7] है इसके नीचे षटचक्र पिंड में है जिनके नाम यह हैं (१) आंखों के पीछे—यहां सुरत का ठहराव है; (२) कंठ—यह प्राण का स्थान है; (३) हृदय—यह मन व

माया का स्थान है; संकल्प, विकल्प यहीं से उठते हैं; (४) नाभि कंवल— (५) इन्द्रि चक्र (६) गुदा चक्र।

इस सुरत मार्ग के भेद को केवल सन्त जन ही जानते हैं जिन्होंने इस पग पर चल कर आत्मा का साक्षात्कार किया है और अपने अनुभव का लोकहित बखान किया है। सन्सारी-जन इस मार्ग से अनभिज्ञ हैं।

"अंधयारे में चान्दना, कोई देखे संत सयाना।

कहै पानप यो खेल अकल को, भेष मरम नही जाना॥"

वैसे सन्सार में पंथों की कमी नहीं है। सन्यासी, उदासी, बैरागी, अवधूत— अनेक पंथ दिखाई पड़ते हैं पर काया सब की विष भरी है। बहु प्रकार के रूप बना कर यह लोग सन्सार को ठगते हैं। हरि घट में रम रहा है उसमें इनका चित्त एक पल भी नहीं ठहरता है—सिर मुंडाना, भभूत लगाना, नग्न रहना, काया को तपाना, इन बाह्य चिन्हों का नाम सन्यास या बैराग्य नहीं है वैराग्य है मन का स्थिर करना। "मन रंगा सोई रंगा, सांचा भेष अलेख" मन से विषयों में रमन करना और बाहर से त्याग दिखाना दम्भ हैं। साधू वह है जो मन साध कर घट में अगाध वस्तु की खोज करता है, सन्यासी वह है जो कर्मों में आसक्त नहीं है और कर्म न करने पर भी जिसके द्वारा अनन्त कर्म होते रहते हैं। वह गुणों को नष्ट करके गुण रहित होता है, महंत वह है जो मैं को हत कर हरि चर्णों में रमता है। सच्चा पंथ वह है जिस पर चलने से राम मिलते हैं यह मार्ग गुरु द्वारा प्राप्त होता है जिस पर कबीर, नानक, पानप, गोरख, भरतरी आदि सन्तों ने चलकर आत्म-दर्शन किया है।

भेष धरे क्या होयगा, जो भेद न हरि का पाया ।
घर में साहब रम रहा पानप, पलक चित नहीं लाया ॥१

सुरत थकी न संसा थकी, चन्चल मन नहीं थाका ।
घर घर भेष मगन हुए डोलें, पानप कौन हाल होय ताका ॥२

भेष धरे बहूरुपया, मन पे चढ़ा न रंग ।
कहै पानप मुक्ति कैसे होई, प्रभुसूं किया न सँग ॥३

गुनी[1] गुनै मौनी[2] मुनै, रहै तपातप लाय ।
कहै पानप आत्म-राम का, मर्म न पाया जाय ॥४

साधू मनही मुड़ाईये, सीस मुड़ाये काहि ।
जो कुछ किया सो मन किया, सिर तो किया नाहि ॥५

बहुत सयाना बाहर भटके, घर में ढूंढ़े नाहि ।
पानप कहै कहांसूँ पावे, वस्तु रही घर माहि ॥६

घर में रामत कीजऐ, जहां हीरा, रत्न, जवाहर ।
कहै पानप घट को ना खोजे, मूरख भटके बाहर ॥७

घर छोड़ घर घर फिरे, सो जानो मति-हीन ।
कहै पानप घर में घर पावे, जो होय आत्म लौलीन ॥८

घर मत छोड़ बावरे, घर छोड़े घर जाय ।
कहै पानप जब घर रहै, मन घर माहि समाय ॥९

घर में घर है खोज ले, अगम अगोचर धाम ।
सुरत लगे पानप कहै, निज[3] पावै आराम ॥१०

मन रंगा सोई रंगा, सांचा भेष अलेख ।
कहै पानप देह निरन्तर, टुक सुरत लगा के देख ॥११

१=कर्मनिष्ठ, २=त्यागी, ३=स्वयं, जीव ।

चिट मिट कीनी भेष बनाया, सूफ[1] बढ़ाया दाढ़ा ।
कहै पानप शब्द पहचाना नाहीं, गुरू का मारग गाढ़ा ॥१२
मन रंगने को गुरू फरमाया, मूढ़ चीथड़े रंगता है ।
दरसनसूं सौंही[2] न होवे, कायर पल पल भगता है ॥१३
मन को रंगे सुरतसूं, फिटकरी दे गुरू ज्ञान ।
कहै पानप जब मन रंगा, मन न होय चलायमान[3] ॥१४
चंचल मन सो गृही[4] है, स्थिर चित फक़ीर ।
खाक लगाय क्या होयगा पानप, सिर पे यम की पीर[5] ॥१५
अवधू[6] सोई अवध को जीते, पांच तंत कर एक ।
कहै पानप अवधू कैसे होई, घट में लखा न पुरुष अलेख ॥१६
हर हर धुन निरंतर, आठ पहर लौ[7] लागी ।
कहै पानप और सब जगत है, वह सांचा वैरागी ॥१७
सोई त्यागी जानये, सुरत धरे मन माहि ।
भोग सब ही भोगता रहै, मनसा चले पलक नाहि ॥१८
महंत सोई जो मैं को हते, आठ पहर हरि चरनों रते ।
करे एकठे पांचो तंत, कहै पानप है सोई महंत ॥१९
पांच तंत कर लीनो एक, सत्गुरु सेती लियो विवेक ।
अधर धार में पांचों लाया, कहै पानप कर्ता दृष्टि समाया ॥२०
प्रेमो सिर धर प्रेम कमाया, भेष बैल बंजारे का ।
खांड़ भरे भुस खाता ड़ोले, खाना खांड काम हरि प्यारे का ॥२१
सब ही बैल हरि नाम बिन, निसदिन बहता ड़ोलता ।
कहै पानप सत्गुरु बिना, लखा न घट में बोलता ॥२२
साधू सोई रहै मन साध, घट में देखे सोधै नाभि ।
मन को मारे मन ही खाय, कहै पानप साधू बैकुंठ जाय ॥२३
साधो की फोजें फिरें, हम एक साध नहीं पाया ।
कहै पानप मैं जगत ढ़ंढोला, समदृष्टि दृष्टि न आया ॥२४

१=ऊन, बाल, २=सन्मुख, ३=चञ्चल, ४=गृहस्थ, ५=दुख, पीड़ा, ६=अवधूत, योगी, ७=लगन ।

समदृष्टि सोई जानिये, दृष्टि में दृष्टि समाई।
कहै पानप ताकी पलक लगे ना, सुरत जाय वहां छाई ।।२५
वस्तु सुरत मन धर अंतर में, योह सत्गुरु की सीख।
कहै पानप वहां पूर्ण दर्शन, क्यों घर घर मांगे भीख ।।२६
सुगम है साध कहावना, कठिन संत की चाल।
पाँच बांध पानप कहै, गगन चढ़ै तत काल ।।२७
सोई साधू सुरत मन साधै, अंतर माहि बसावै।
बिन कर तूर[1] बाजें बाजें, बिन रसना गुन गावै ।।२८
औघट घाटी नक सुध, जहां मन और पवन बसावै।
तिमिर मिटै पानप कहै, अलख दरस तहाँ पावै २९
आतम खोज सुरतसूं सेवे, यो मत सांचा जान।
पांचों तंत मिलावे ता धर, कहै पानप भक्त परवान[2] ३०
जा के साधे राम मिलत हैं, सांचा मत है सोई।
और मते सब झूटे पानप, राम न भेंटे कोई ।।३१
तन मन खोजे राम मिलत है, सांचा मत है सोई।
अंतर सुरत लगावे पानप, हरि का दरसन होई ।।३२
कहै पानप सत्गुरु बिना, पथ न पावै कोय।
जाका साखी कोई नहीं, हरि दर झूटा होय ।।३३
पंथ अपंथ बिन पग चढ़ना, कहो किसका पंथ बतावै।
कहै पानप सुनो भाई साधो, घर खुटे[3] घर माहि समावै ।।३४
सेवा पूजा बंग नमाज़, चार मुल्क में योही आवाज़।
अगम पंथ किन्ही बिरला जाना, सत्गुरु मिल पानप पहिचाना ।।३५
जग व्योहारी भगत नहीं, भक्ति खांडे की धार।
सुरत बांध उलटा चढ़ै, पानप नक सुध पंथ निहार ।।३६
षट-दल बेधे योही भक्ति, फकीरी लीजे देख अदेख।
मन थिर रहै दरसन होय पानप, यों संतो किया विवेक ।।३७

१=नगाड़ा, २=प्रमाण, ३=खुले।

मन को मार थिर करे, सही फकीरी सोय ।
सांग किये पानप कहै, नहीं फकीरी होय ॥३८
हरि दर्शन बिन मन नहीं ठहरे, सुरत न राखी थीरी ।
कहै पानप बिन प्रभु के दरसन, अहला[1] जाय फकीरी ॥३६
भेष धरे और दुरमति[3] राखे, यो सब कच्ची पीरी[2] ।
पानप कहै सुनो भाई साधो, निर्मल नाम फकीरी ॥४०
पानप नाम जपें तेई अमर हैं, यो दुनिया मति भंग ।
दत्त, भरतरी और कबीरा, गोरख, गोपीचन्द ॥४१
नानकदासा और कबीरा, पानपदास तिन्हौं का चेरा ।
नानक पानपदास–कबीरा, सकल सृष्टि का एक सरीरा ॥४२
छिपी न भक्ति कबीर की, नानक छिपा न बोला ।
पानपदास प्रगट कहै, तू कर आतमसूं मेला ॥४३
नानक नानक क्या करे, नानक कहा सो बूझ ।
कहै पानप आतम खोज ले, तुरत पड़े हरि सूझ ॥४४
दादू दादू क्या करे, साधू मन को साध ।
जो घट खोजे आपना, तो पावे वस्तु अगाध ॥४५
दीन जान मोहि दीक्षा दीनी, दत्त गुरु मैं चेला ।
फोज फिरे हैं भेष की, मैं देखा दत्त अकेला ॥४६
बासा हरि का सर्व में, सबही रहे बिसार ।
कहै पानप कोई खोजे नहीं, सत्गुरु कहै पुकार ॥४७
घृत दूध में सब कोई जाने, जतन बिना योहीं जाहि ।
ऐसे साहब देह में पानप, रोम रोम के माहि ॥४८
सब खेल करतार के, है करता सब माहि ।
जीव भुगते करनी आपनी, गरज साहब को नाहि ॥४६
जिनकी लागी एकसूं लाग, दूजी लाग दई सब त्याग ।
लाग एक ही लागी रहै, पानप दूजी बात न कहै ॥५०

१=व्यर्थ, २=धूर्तता, ३=दुष्टता

१

दोहा—अगम ध्यानसूं सूझे धनी, ब्रह्म-ज्ञानसूं छूटे मनी[1] ।
ज्ञान और ध्यान सुरत के साथ, पानप साधे दरस समात ॥
केते योगी धरें युग[2] ध्यान, परम तत्त नहीं पावें जान ॥
सेली[3] गूंद गले में डारें । सुरत सेली का मर्म न जाने ॥
पांच तंत की सेली गूंदे । गुरु शब्द ले मन को मूंड़े ॥
सेली गूंद लगावे सुन्न । कहै पानप सोई पावे मून[4] ॥

२

दोहा—मोही भरोसा नाम का, ताते निर्भय खेलूं ।
कहै पानप सिर हरि को सोंपा, सिर हरि चर्णों में मेलूं ॥१
धर्म सोई जो हरि का दर्शन, और धरम कुछ नांहि ।
और सब अधर्म हैं पानप, जग भटके भ्रम के माहि ॥२
मून सुन्न में अजब ठिकाना । बिन सत्गुरु किन्ही मर्म न जाना ॥
भवनै भवन[6] भवंतर[7] कहै । आत्मराम निरंतर रहै ॥
आत्मरूप बरन[5] जो धावे । तो परम पुरुष का दरसन पावे ॥
ऐसा तत्त सुरतसूं जाना । कहै पानप मुक्ति पहिचाना ॥

३

दोहा—सुर्त[8] नहीं कुछ सुरत की, सुरत सब सुध लेह ।
कहै पानप योही सयान है, तू सुर[9] सुरत में देह ॥१
अपने अपने रंग में, राचा रहे सब कोय ।
हरि रंग राचे पानपा, जाहि सत्गुरू भेंटा होय ॥२
सोई मता रता हरि सेती । छूटी सकल भ्रमना जेती ॥१
आन देव की सेवा त्यागी । मन प्रतीति आत्मसूं लागी ॥२
मन में कहिये ब्रह्म ठिकाना । तापर से छूटे, भरमाना ॥३
गुरु लखाई औघट घाटी । कूंची[10] लाय खुली कपाटी ॥४
अब मेरे मन भई प्रतीति । कहै पानप मिटी भरम की भीत[11] ॥५

१=अहम्-भाव, २=माला, ३=लम्बा, ४=संसार में, ५=वर्ण, प्रकार, अक्षर, ६=देवस्थान, ७=अगम, ८=सुध, ९=ध्यान, १०=ताली, ११=दीवार ।

४

दोहा—मनसा दौड़ी फिरत है, बात बात के साथ ।
कहै पानप बातों सुखी, तो कैसे आवै हाथ ॥१
मनसा दौड़ी फिरत है, बात बात के साथ ।
कहै पानप मन मिलायले, तब रह्यो ठहरात ॥२

आगे आगे फल हैं दोय । वे फल दोऊ न खोजे कोय ॥
वे फल खोजे मुक्ति ताही जी । ताहि न पावें पंड़ित क़ाज़ी ॥
फल हैं दोय एक है कला । अचल अचंभा ड़ोले चला ॥
वे फल मुक्ता कोई न खाय । कहै पानप तीरथ भरमन[1] जाय ॥

५

दोहा—जबलग सुरत निरत नहीं थीर, तबलग ना प्रतीत ।
कहै पानप मैं ताहि न परसूं[2] , जाके सब जग की रीति ॥१

जिन गुण नासै[3] सो सन्यासी, निर्गुण पद का रहै उपासी[4] ॥१
नवखंड मनसा खोज लगावे । देख उजाला चलन न पावे ॥२
निसदिन धरे ध्यान की धुनी । तामें ज्ञान जरावै पवनी[5] ॥३
अपने मन पे ड़ारे फांसी । कहै पानप सच्चा सन्यासी ॥४

६

दोहा—वस्तु न जाने आपनी, धर के भूला भेष ।
कहै पानप ताकी सुध नहीं, घट में पुरुष अलेख ॥१

दंड़ी सोई जो संसा दंड़े । गगन मंडल में आसन मंडे ॥
मन को पलक चलन न देई । मनसा खेंच आप में लेई ॥
घट घट आतमराम पहचाने । सतगुरु–शब्द सत कर मानें ॥
निसबासर धरे ध्यान अखंडी । कहै पानप सोई साँचा दंड़ी ॥

१ = भ्रमण, यात्रा, २ = श्रद्धा, ३ = त्याग, ४ = पूजक, ५ = प्राण वायु ।

७

दोहा–पंच अगन[1] धुनी तपे, और रहै बैठा मौन ।
मन मनसा भटकती फिरे, कहो सुमरन लागा कौन ।।१
मन मनसा भटकती फिरे, सुमरन हृदय नहीं किया ।
कहै पानप अमृत संग तजो, मूढ़[6] विष-रस पिया ।।२
मौनी सोई बोलता रहै, ताकी बोली कोई न लहै ।
आप माहि निरखे आप, निस-दिन जपै निरंजन जाप ।
मौनी हंस खोज कर-पावै, मानसरोवर अमिल मिलावै ।
अमिल मिल तब मुक्ता पाय, वह हंसा नहीं आवै जाय ।
लखपाई सत्गुरु की सैनी, कहै पानप सोई सच्चा मौनी ।

८

दोहा–जती सोई राखे रती, सती जीवत होय ।
कहै पानप पिया प्यारी तेई, ऐसे लछन[2] सोय ।।
यती सो जोहै[3] आत्मा, सोई यती परमान ।
कहै पानप नर्की जीवड़ा, जो नहीं आतम पहचान ।।२
जतन बिन जती कहावै, जत-मत[4] का कोई मर्म न पावै ।
पाहन पूजे करै अभिमान, ते नहीं पावै ब्रह्म-ज्ञान ।
ब्रह्म-ज्ञान बिन भक्ति न होई, भक्ति बिना भ्रमा जग लोई ।
जतमत साधै सोई जती, कहै पानप सोई राखै रती[5] ।

९

दोहा–करता हरता एक है, ताही का प्रकास ।
पानप ताको देखले, तू क्यों होय उदास ।।१
चाह भई हरि दरस की, जगसूं भया उदास ।
कहै पानप जीव तब, पावै चरण निवास ।।२
सोई उदासी रहै उदास, मनसा राखी चर्ण–निवास ।१
सुरत बांध के मनसूं अड़ै, पिंगल कलाधर[7] मझ[8] धरै ।२
अनहद-नाद अनन्त धुन बाजें, परम पुरुष जहां आप बिराजें ।३
प्रेमी होय चर्णों चित लावै, तब परम पुरुष का दर्शन पावै ।४
गुरु प्रतापसूं दुरमति[9] नासी, कहै पानप है सोई उदासी ।५

१=आग, २=लक्षण, ३=खोजे, ४=पंथ, यतन, ५=प्रेम, ६=मूर्ख, ७=इड़ा, ८=मध्य, ९=दुर्मती, कुमति ।

१०

दोहा—गले में कंठी काठ की, माथे लाई माटी ।
कहै पानप बिन सत्गुरु भेंटें, लखे न औघट घाटी ॥१
जाके कंठी ज्ञान की, सुरत निरत की माला ।
मस्तक द्वादस तिलक बिराजै, कहै पानप मिले गोपाला ॥२
बैरागी सोई जिसे योह बैराग[2] , मनसा रहै अधर घर लाग ।१
घस घस पवना तिलक बनावै, राम नाम दोऊ छापे लावै ।२
निसदिन तन मन खोजत रहै, सत् ही देखे सत् ही कहै ।३
आठों पहर रहै लौ[1] लागी, कहै पानप सच्चा बैरागी ।४

११

दोहा—देख अर्ष[3] का कंगूरा[4] , संतों वाह वाह कही ।
वाह वाह करे दुनिया पानप, भरम के साथ बही ॥
नाम समाने[5] नानक साहा, दिल खोला अपना दिल लाहा[6] ।
खोल अकलसूं दिल दरवाज़ा, प्रगट भया अनाहत बाजा ।
बकरी पांच शरीहत[7] कीन, जबजा भयो नाम लवलीन ।
सुनता रहै अनहद तंती[8] , कहै पानप सोई नानक पंथी ।

१२

दोहा—गावे शब्द कबीर का, पोथी लई बनाय ।
कहै पानप बिन अक्षर खोजे, सदा अंधेरा बिहराय[9] ॥१
सांचा शब्द कबीर का, गह सो उतरै पार ।
कहै पानप बिन अक्षर खोजे, यह मरें पुकार पुकार ॥२
काया खोजे सोई कबीर, आसन करे त्रिबेनी तीर ।१
आसन त्याग अंत[10] नहीं जाय, उलटे मनसा औघट नहाय ।२
मनसा नहाय निर्मल होय, ममता जल को ड़ारे धोय ।३
चंचल मन कर राखै थीर, कहै पानप है सोई कबीर ।४

१=लगन, २=बैराग्य, ३=स्वर्ग, ४=चोटी, बुर्ज, ५=लीन होना, ६=देखा, ७=मार कर बलि देना, ८=तंतरी, बाजा, ९=बिहरना, घूमना, १०=और कहीं ।

१३

दोहा–पानप सो जो पी[1] परण[2] गहै, पी की छोड़ और न कहै ।
अर्ध उर्ध बिच अमृत पीवै, कहै पानप सोई युग युग जीवै ॥१
या काया में मन है राजा, पांच स्वाद संग ड़ोले भाजा ।१
तन रखवाली कहो कौ करै, निर्भय चोर चोरी करै ।२
तन में मनवा चेतन होय, कहै पानप ताको त्रास न कोय ।३

१४

दोहा–यह मन हस्ती[3] बड़ा अपरबल, वहां झीन[4] सूई का नाका ।
कहै पानप वहां वही समावे, चींटी होय मन ताका ॥१
चींटी जैसा मन करे, बांध सुरत के तार ।
कहै पानप ऐसा संत होय, सो पहुंचे हरि के द्वार ॥२
तन में मनवा है जंजाल[5], बस पड़ा जीव बड़ा अमाल[6] ।१
जिन योह जग चुन चुन खाया, जग पचमरा[7] हाथ नहीं आया ।२
तापे ड़ारे पवन की ड़ोरी, मन बस होवे पवन झकोरी ।३
गहबर[8] भयो कला विष त्यागै, जब पानपदास नाम को लागै ।४

१५

दोहा–खुदा कुफ़ुर[9] से दूर है, कुफ़री हददा[10] दोय ।
कुफ़र तजै दीदार हो, कहै पानप बूझै कोय ॥१
सोई फ़क़ीरी फिकर मिटावे, अंतर मनसा मन्है जुटावे ।१
सुख उपजे तब होय लड़ाई, मन मनसा दोऊ फंद आई ।२
कहै पानप सोई फ़क़ीरी, मूलबंध मन राखे थीरी ।३

१=कंत, पति, २=प्रतिज्ञा, पण, ३=हाथी, ४=सूक्षम, ५=झंझट, फंसाव, ६=अधिकारी, शासक, ७=परिश्रम से थकना, ८=व्याकुल, ९=नास्तिकता, १०=सीमा ।

१६

दोहा—साधू पहिचाने धन्य ते, धन्य धन्य वह साध ।
 ढूंढ़ा साध न पाईये पानप, वह तो वस्तु अगाध ।।१

अर्ल:—धन्य धन्य गुरुदेव, जिन्हों से यह मति पाई ।
 तिहूँ लोक में भटकती, सोई दृष्टि समाई ।।१
 ऐसा अकरन जो करैं, ताका बन्धन टूटैं ।
 पानप कहै सुनो भाई साधो, जरा मनसूं छूटैं ।।२

सत्गुरु ऊपर मैं कुरबानो, ब्रह्म अमूरत सो पहचानो ।१
थल-थल[1] थीर[2] अचल है सोई, जग नहीं पावै अचरज योहि ।२
जग का तारन[3] तत्[4] है ऐसा, अपना रूप पहचानै जैसा ।३
कहै पानप पाया घट घट माहि, ता दर्शन संसय मिट जाहि ।४

१७

दोहा—आसक[5] नाहो अटक[6] है, अटक नहीं आसक के ।
 कहै पानप मासूक[7] को, आसक पल पल ताके ।।१
 आसक सेती इसक[8] लगाया, आसक से महबूब[9] भया ।
 महबूब और आसक मिल के, दूजा मिट गया एक रहा ।।२

आसक मो जिसे इश्क़ हकीकी[10], त्रिकुटी ब्रह्म अमूर्त नीकी[11] ।
वा मूरतसूं चित्त लगावें, इत उत सुरत चलन नही पावै ।
 माया मोह जाय सब भूल, सो आसक दरगाह[12] कबूल[13] ।
झिलमिल झिलमिल बरसै नूर[14], आसक और महबूब हज़ूर ।
 ज्योती निर्मली घट में देखी, कहै पानप आसक इश्क हक़ीक़ी ।

१=झूलता हुआ (मोटाई के कारण), २=स्थिर, ३=उद्धार, ४=परमात्मा, ५=आशिक, आसक, ६=संकोची, ७=माशूक़, प्रेमिका, ८=इश्क, प्रेम, ९=प्रेमपात्र मित्र, १०=सच्चा, ११=सुन्दर, १२=दरबार, १३=स्वीकार, १४=कांति ।

राग विहाग

कपड़े रंग सांग बनाया, इस मन का भेद न पाया ।।टेक।।
एक जोगी जती सन्यासी, हरि नाम बिना गल फांसी ।१
एक पंडित पढ़ पढ़ भूला, गल फांसो ड़ोले फूला ।२
एक मौनी और जटाधारी, हरि बिना भक्ति भई खुवारी[1] ।३
देखा षट-दर्शन सब धोका, एक ब्रह्म ज्ञान अनोखा[2] ।४
यो तो चार निगम अंधियारा, साँचा ब्रह्म ज्ञान उजियारा ।५
कहै पानप तापे मैं वारा, जिन तन मन का भेद विचारा ।६

राग आसीकीवार

सस्त्र बाँधे चोर सिपाही, साध संत को सस्त्र क्या ।
मूढ़ फकीर बांध लियो सस्त्र, जन्म अकारथ खोय दिया ।।टेक।।
बांध सुरत मन आतम खोजे, जिनका मता अगाध भया ।
ज्ञान ग़रीबी असल फकीरी, हरि चरनों चित्त लाग रहा ।।१
दूध भाव की भिक्षा लेई, सत संतोष जिन संग गहया ।
देव-दत्ता कब सस्त्र बांधे, तीन लोक ड़ंका तिन का ।।२
जो प्राणी मुक्ति फल चाहै, फेर ले मन को मनया ।
पानप कहै तिरेंगे तेई, जिन कुछ साधी धर्म दया ।।३

कवन पंथ मिलन दुहेला[3] , लोगो भावै हांसी है ।।टेक
लोक वेद कुल कान, साधो योही गले में फांसी है ।१
परम लोक का तेई पंथ पावे, मनसा अंतर आसी है ।२
मन मनसा दोऊ अंतर लग रहै, अनहद धुन प्रकासी है ।३
परम लोक का कोई न संगी, पानप रहत उदासी है ।४

१=तिरस्कृत, बरबाद, २=विलक्षण, ३=कठिन, ४=

इश्क़ ग़र्क

वह जाय[1] इश्क़ पोशीदेह[2] तन, ज़ाहरे मुबतलाए[3] मन ।
क़ादरा[4] दिलबर[5] दानी, मुरशिद ईं गुफ्त फरमानी ॥
मिन ईं पुरशीदम[6] मुरशिद, कुजा[7] मकान रब्बानी[8] ?
बखाना अतिशबाद, ब-जाय जाय पेशानी ॥
ब-बीनम[9] नूर नूरानी, सफर वह जांफिसांनी[10]।
तसद्दुक[11] पानपा होवे, महरम[12] दरगाह[13] का जो है ॥

शब्द मार्फ़त

समझ यार समझो टुक रमज़ें[14] दुरवेशों के ।
जानां बिना जाने तेरी जान ही को जियां[15] है ॥१
रूह[16] करे सैर और फेल[17] करे दिल तेरा ।
नमाज़ और वज़ीफ़े[18] का ठौर न ठिकाना है ॥२
जो दम ख़ाली जाय याद बग़ैर साहब की ।
ग़फलत गुनाह बंदा आफ़त में आता है ॥३
किबला मन मक्का नमाज बांग हरदम होय ।
फ़नां[19] दुरवेश कोई हज को कमाता है ॥४
पिन्डे से मसजिद में दिल को तहक़ीक करे ।
रूह को परोये दीदार मौजूद आता है ॥५
वही मुरशीद मेरा, मेरा कुफ़र[20] गुब्बार मेटे ।
कहै पानपदास आजिज़[21] तिसका बन्दा ज़ादा है ॥६

१=स्थान, २=परीक्ष, गुप्त, ३=लीन, ४=शक्तिमान, ५=प्रियतम, ६=पूछा, ७=कहां, ८=कृपालु, भगवान, ९=दीखना, १०=अति कठिन, ११=बलिहारि, १२=जानकार, १३=राजसभा, १४=सैन, १५=हानि, १६=सुरत, १७=कार्य, १८=पाठ, १९=नष्ट, २०=अज्ञान, २१=सेवक ।

शब्द फार्सी

कहै क़ुरान सो ना करे, पढ़े क़ुरान शबोरोज़[१] ।
दिल ही में कहिए ख़ुदा, कहै पानप दिल-सोज़[२] ॥१
कहै पानप दिल ग़ैब[३] में, कर अक़ल से तहक़ीक[४] ।
मुरशिद[५] से मिल पाईये, अल्लाहे दीदार[६] हक़ीक[७] ॥२
जिन्होंने दिल से दिल को खोजा, दिल में रूह परोई ।
कहै पानप जहां तहां नज़र पसारी, तहाँ तहां अल्लाह दीखे सोई ॥३
ड़ोरी रूह करे दिल दाना, यो खास बन्दों की तसबी[८] ।
मुसल्ले ईमान रोज़ोशब हरदम, योह जिक्र[१०] और सबकसबी[९] ॥४
जिक्र करे ज़ुबां तसबी बग़ेर, लगी रहै शबोराज़ ।
कहै पानप बन्दे खास वे, अल्लाह के दिल सोज़ ॥५
फ़िक्र करें ते बावरे, जिक्र करें ते सार ।
कहै पानप मन में ज़िक्र कर, कर रहा फ़िक्र सब कर्तार ॥६
नहीं तालिब[११] दीदार का, मैं सब सब देखा जोहय[१२] ।
पानप तो तालिब का तालिब, जो कहीं तालिब होय ॥७
सब जग देखा जोह के, मैं कोई न देखा आशिक ।
कहै पानप मैं जो जो देखा, सो सो देखा फ़ासिक़[१६] ॥८
हिन्दू नहीं तुर्क नहीं वह, पाक ज़ात अल्लाह ।
मन को मारे सुरत से पानप सो पहुँचे दरगाह ॥९
भूले मन कर बंदगी, फिर ज़िन्दगी नाहि ।
ज़िन्दगो सानी[१३] ख्वाब की, फिर खाक[१४] के माहि ॥
ज़ूद वज़ूद तहकीक कर, वह मौजूद है सांई ।
बाद के चश्मे लाय ले, जिन्हों से चश्म खुल जाई ।
दिल दर[१५] सफर व मंजिल, पानप बुगो गुफ़्तारा ।
कोई दुरवेश जानै बन्दगी, आलम कुल जुदारा ॥

१=रातदिन, २=व्यथा, पीड़ित, ३=परोक्ष, गुप्त, ४=खोज, ५=गुरु, ६=दर्शन, ७=यथार्थ, ८=माला, ९=पेशा, १०=याद, ११=इच्छुक, १२=खोजकर, १३=समान, १४=मिट्टी, १५=द्वार, १६=बदकार ।

गगन डोरी

एक भेष बनाय भए बैरागी, मन बैराग फिरे ताहि त्यागी ।
पाथर पूजे मन सिहावे[1] , तन संजम[2] करता नहीं पावे ॥१
एक जटा बढ़ाय भए सन्यासी, जप तप भरम में काया त्रामी ।
सर्व सन्यास करे जन सूरा, दलमल[3] मन पद परसत[4] पूरा ॥२
दोहा—हरि—रंग लाग संत जन, जग रंग दिया बिसार ।
सेव तजी पाषान की, आतमराम सभार ॥१

राग जंगला

समझ चलो मेरे भाई लोका, समझ चलो मेरे भाई ।
संत मल्लाह पुकारें ठाडो, नौका घाट लगाई ।।टेक।।
कहै मल्लाह घाट पे आव, जगत सबद सुन भागै ।
एसा यो जग मत[5] का हीना, ठगवा के संग लागै ॥१
निज ही घाट ठाठ[6] सब निज ही, बिन प्रतीति न पावै ।
पलमाहि भवसागर तारै, जो मन प्रतीति बसावै ॥२
अंतर खोजे सब जग सूझै, काहू जन हृदय में धारा ।
सुरत निरत का बांधा बेड़ा, ता चट उतरै पारा ॥३
यो जग अंध अंतर न खोजे, ताहि में ब्रह्म पसारा ।
पानप कहै अंत पछताई, सिर पे यम का भारा[7] ॥४

१=मुग्ध, २=संयम, ३=मसलना, मारना, ४=छूना, ५=पंथ, ज्ञान, ६=रचना, ७=बोझ ।

नमोः देव देवं नमोः ब्रह्म ज्ञानी ।
नमोः सेव सेवं नमोः तत्व ज्ञानी ॥
नमोः संत सत्गुरु जिन्हों तत्व दीन्हा ।
नमोः दास पानप जिन्हों तत्व चीन्हा ॥
ॐ लिखंतं पढंतं सुनंतं शब्द विचार करंतं, मुक्ति फलप।यंतं ।
श्री गुरु के चरनारबिंदं नमस्कारं-नमस्कारं ॥

॥ वंशावली ॥

१—श्री भूराज जी पन्ना [ङ]
२—चौधरी बख्तमल जी पन्ना [झ]
३—लाला मनीराम जी पन्ना [ञ]

←——→

ला० दयालदास → बद्रीदास → हरकेशदास → गूदडमल → गोकलचन्द → गुलाबराय

↓

लाला मनीराम

(आप पानपदास जी की सेवा में उपस्थित हुए)

- ला० पञ्जाबराय
  - साहबसिंह
    - सलामतराय
      - शिवलाल
        - किशोरीलाल
          - शांतिस्वरूप
- ला० सूरजमल
  - शादीराम
    - चन्द्रप्रकाश
      - सर्वशक्तिस्व०
- ला० शीलचन्द (आपको शाहआलम ने ३ ग्राम की जागीर का फरमानेशाही दिया था)
  - ला० बालकराम
    - परसराम
      - सौदगरमल
        - प्रह्लादस्व०
          - प्रतिपाल स्वरूप
            - देवेशस्वरूप ← व → वागेशस्वरूप
        - जगदीश स्वरूप
        - इन्द्रप्रकाश
          - सोमप्रकाश
          - निधीश प्रकाश
          - सुधीश प्रकाश
    - ● मानकचन्द
      - 卐 गुरबख्शराय
        - हरीरतन स्व०
          - सिद्धिसाधन स्वरूप
            - अजयकुमार
        - झलकनिरञ्जन
          - विजय कुमार
          - रवीन्द्र कुमार
  - लालजीमल
    - रघुनाथदास
      - रूडामल
  - दुलीचन्द
    - कांजीमल
- ला० रूपचंद
- गिरधारीलाल
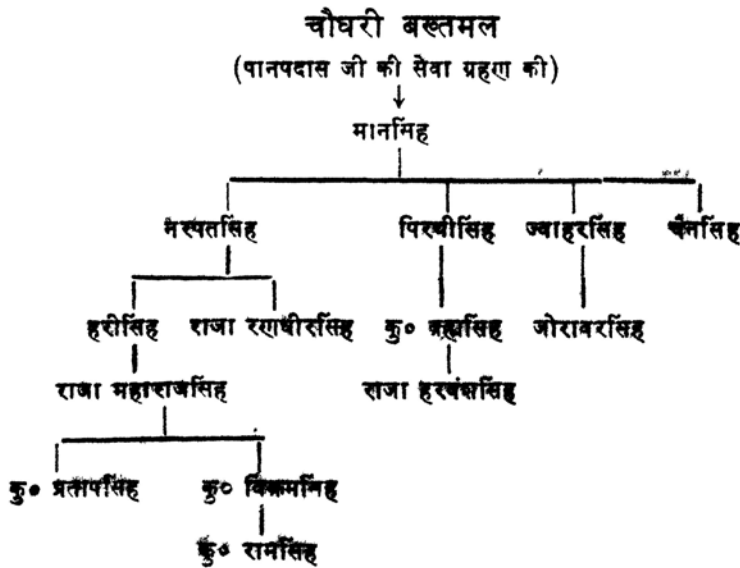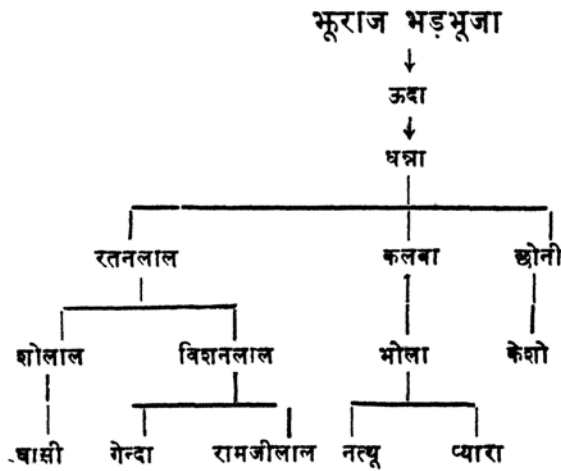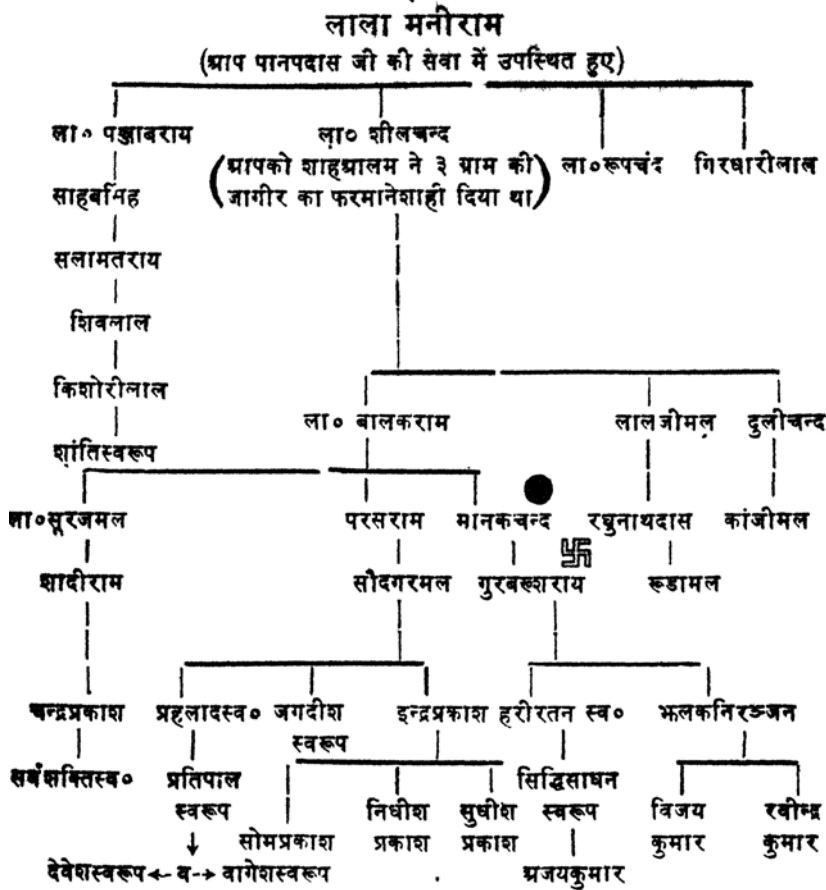
● ला० मानकचन्द जी की समाधि धामपुर में बनी है। आपकी मृत्यु सन् १८८८ तदनुसार सम्वत् १९४५ में हुई थी।

卐 रायसाहब ला० गुरुबख्शराय उर्दू व फारसी के बड़े विद्वान थे। आपने महात्मा पानपदास जी की जीवनी सविस्तार लिखने के लिए खोज आरम्भ की थी, खेद है कि कार्य पूरा न कर सके। आपकी कथित पंक्तियां नीचे दी जाती हैं।

करूं ध्यान अव्वल निराकार का, हुआ है जिससे इज़हार साकार का।
निराकार वहदत को बतला रहा, है साकार कसरत को दिखला रहा।
निहां है निराकार साकार में, है आभास उसका हर आकार में।
मगर सन्त आरिफ़ उठा कर नकाब, हुए उसके दीदार से फ़ैज़याब।
जहां में अगरचे लाखों फ़कीर, कोई उनमें मोहताज कोई अमीर।
है कोई गद्दी नशीं बा-कर्रोफ़र, चले पालकी में कोई बैठकर।
मगर जो हैं आशिकाने खुदा, है उन सब से इनका ढंग जुदा।
... आरिफ़ हैं कामिलहैं मरदां शनाश, किये अपने काबू में नफ़स और हवास।

संत समागम दीजे मोही, तिन में प्रभु पाऊं मैं तोही ।।टेक
संत बड़े तेरे दरबारी, तिन्ह में पाऊं प्रभु खबर तुम्हारी ।।१
तापर ते जन होंये दयाला, चरण दिखाय-देत तत्काला ।।२
संत मिले तो हरि रंग लागैं, संत मिलैं तो सब भ्रम भागैं ।।३
संत-चरण की कर मोहि धूरो, कहै पानप पाऊं मति पूरी ।।४

मुद्रक:—चन्द्रलोक प्रेस, ६१—गङ्गारामपुरा, मुज़फ्फ़रनगर ।